श्रीकृष्ण-सन्देश
वर्ष : १०
अंक : १
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

* निगमामृत *

सूररसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥

अथर्व० २, ११, ४

• • •

अरे क्यों होते हो भयभीत, बुद्धिमें वोते हो अज्ञान ।
तुम्हीं हो स्वयम् प्रेरणा-केन्द्र, तुम्हारी अन्तर्शक्ति महान् ॥
भरा है तुममें अमर प्रकाश, स्वयम् तुम ही हो, आत्मस्वरूप ।
तजो यह संग, बढ़ो उस ओर, उन्हें छूलो, जो हैं गतिमान ॥

• • •

Let not yourself be moved
by fear and consternation!
Don't you know, of light
are you the eternal incarnation!
In your own form you
can merge with elation!
Surpassing the equals and
overtaking the outdoers!
Should be your journey in gradation!

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य
एवं संस्कृति-प्रधान
मासिक-पत्र

प्रवर्तकः
पुण्यश्लोक जुगलकिशोर बिरला

वर्ष : १०, अङ्क : १
जनवरी, १९७५
श्रीकृष्ण-संवत् ५१९८

वार्षिक : ८ रु०
आजीवन : १५१ रु०

प्रबन्ध सम्पादक :
देवधर शर्मा

सम्पादक :
सत्येश पाठक

प्रकाशक :
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा
दूरभाष : ३३८

'श्रीकृष्ण-सन्देश' के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी रचनाओं द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिक्य, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोध जाग्रत करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

नियम : उद्देश्यमें कथित विषयोंसे सम्बद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक रचनाएँही इस पत्रिकामें प्रकाशित होती हैं। रचनाओंमें काट-छाँट, परिवर्त्तन-परिवर्धन करनेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। रचनामें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी हैं, सम्पादक नहीं।

लेखकको अपनी रचना कागजके एक पृष्ठपर बायें हाशिया छोड़कर, स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें लिखकर भेजनी चाहिए। कृपया ध्यान रखें कि लेखका कलेवर अधिक बड़ा न होने पाये, साथही सामग्रीभी सुन्दर, सामयिक और प्रेरणाप्रद हो। अपनी रचना सम्पादक—'श्रीकृष्ण-सन्देश' श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान सेवा-संघ मथुराके पतेपर भेजें।

'श्रीकृष्ण-सन्देश' अपने इसी अंकसे १०वें वर्षमें प्रवेश कर रहा है। भविष्यमें भी जनवरीसे ही इसका वर्ष-परिवर्तन हुआ करेगा। प्रत्येक मासकी पहली-दूसरी तारीखतक इसे पाठकों तक पहुँचानेका हमारा संकल्प है।

इसका वार्षिक शुल्क ८)रु० है, किन्तु १५१)रु० एकसाथ जमा करने वालेको जीवनभर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' प्राप्त होता रहेगा। शुल्क की राशि मनीआर्डर द्वारा भेजनी चाहिए, साथही मनीआर्डर-कूपनपर प्रेषकका नाम और पता सुस्पष्ट अक्षरोंमें लिखा होना चाहिए।

विज्ञापन : 'श्रीकृष्ण-सन्देश' में उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। इसमें अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक-द्रव्योंके विज्ञापन प्रकाशित नहीं किये जाते हैं। विज्ञापन शुल्क : पूरा पृष्ठ-मात्र ५००) रु० एवम् आधा पृष्ठमात्र ३००)रु० है।

पत्र-व्यवहारका पता—
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान

प्रत्यक्षदर्शियों के शब्द-सुमन

(जनवरी : सन् १९७५)

○

श्रीकृष्ण जन्मस्थानको देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। यह स्थान भारतका गौरव है।

किशोरलाल यदु (P. S.)
हिमाचल प्रदेश।

सचमुच मुझे बहुत सुकून मिला यहाँ आकर। ऐसा लगा, मानों कई जन्मोंकी मुराद पूरी हो गयी। लेकिन मेरी एक बदकिस्मती है कि मैं उस समय भगवान् कृष्णकी जन्मभूमि पर पहुँची हूँ जब मन्दिर बन्द हो चुका है और ट्रेनका टाइम हो जानेके कारण मेरा दर्शनके लिये इन्तजार कर पाना भी असम्भव हो गया है। मैं दर्शनकी प्यास लिये यहाँसे बम्बई वापस जा रही हूँ। मेरे दिलको भरोसा है कि भगवान् कृष्ण मुझे जल्दी ही फिर कभी मथुरा बुलायेंगे और मैं जी भरकर उनके दर्शन कर सकूँगी।

यहाँके कुछ लोग मुझे बहुत अच्छे लगे, क्यों न हों, भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें जो रहते हैं। मेरी समझमें वे धन्य हैं, जो सदा भगवान्के चरणोंमें रहकर अपनी जिन्दगीका सदुपयोग करते हैं।

हबीबा रहमान
लाहरे मैन्शन नं० १
दूसरा माला
माहिम, बम्बई–१६

I along with my family had attended Haridas Jayanti function and also visited the birthplace of Lord Krishna. The artist SUNITA JHING-RAN with father participated in the function and had stayed in Smt. Krishna Devi Dalmia International Guest House.

The place of Lord Krishna's birth gave us immense peace and Anand, the place is still under making on a gigantic grand scale. This

has become one of the most auspicious and religious place not only for Hindus but to entire mankind as it is Lord Krishna who gave the preaching of Gita.

S. B. Lal
Assist. Signal & Telecom'
Engineer
Fatehgarh.

My visit to this place I am remember as one golden point of India.

Tarak Aseyawardena
Gatinaica
Via Keplero-38
Micano, Italy

My Visit here has reminded me of feelings which I have that I cannot explain. I have a wish to return to those days in which Krishna lived, I miss something in these days and it gives me a sense of sorrow to Visit these places as I feel I must have once been here.

Rajeswari Schertyer
(Senda Schertyer)
Atma—Niketan Ashram
4401 Appelheilsen
W. Germany

A very beautiful site, and a privelege to visit for one interested in Indian Religion and Art.

Jack Sewell
Curator of oriental Art
Art Institute of Chicago,
Chicago, Illinois
U. S. A.

Very impressive & historic.

Ehnoml Legge
Sudbury Out, Canada

अनुक्रम

*

●●

has become one of the most auspicious and religious place not only for Hindus but to entire mankind as it is Lord Krishna who gave the preaching of Gita.

S. B. Lal
Assist. Signal & Telecom'
Engineer
Fatehgarh.

My visit to this place I am remember as one golden point of India.

Tarak Aseyawardena
Gatinaica
Via Keplero-38
Micano, Italy

My Visit here has reminded me of feelings which I have that I cannot explain. I have a wish to return to those days in which Krishna lived, I miss something in these days and it gives me a sense of sorrow to Visit these places as I feel I must have once been here.

Rajeswari Schertyer
(Senda Schertyer)
Atma—Niketan Ashram
4401 Appelheilsen
W. Germany

A very beautiful site, and a privelege to visit for one interested in Indian Religion and Art.

Jack Sewell
Curator of oriental Art
Art Institute of Chicago,
Chicago, Illinois
U. S. A.

Very impressive & historic.

Ehnoml Legge
Sudbury Out, Canada

व : १०] मथुरा, जनवरी : १९७५ ई० [अङ्क : १

भक्तियोग

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बहुतही विनम्र होकर जिज्ञासा-भावसे पूछते हैं : "भगवन् ! दो प्रकारके आपके भक्त हैं। एक आपके प्रति अत्यन्त प्रेम रखता है, आपका सतत स्मरण करता है। उसके नेत्र आपके दर्शनको तरसते रहते हैं, उसके कान आपका ही भजन सुनना चाहते हैं और वह हाथ-पैरोंसे आपकीही सेवा करके आनन्दित होता है। दूसरा भक्त अपनी इन्द्रियोंको सतत वशमें रखकर, सर्वत्र समत्वका पालन करते हुए, आपके अविनाशी अव्यक्त स्वरूपका ध्यान करता है। प्रभु ! इन दोनोंमें से आपको सर्वाधिक प्रिय कौन है ?"

श्रीकृष्ण कहते हैं : अर्जुन ! नित्य ध्यान धरते हुए, मुझमें अपना मन लगाकर, जो श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करता है, वह सगुण-भक्त मुझे प्रिय है। किन्तु जो भक्त इन्द्रियोंके वशीभूत न होकर, सर्वत्र समत्वका पालन करता है और दृढ़, अचल, धीर, अचिन्त्य, सर्वव्यापी, अव्यक्त, अवर्णनीय अविनाशी स्वरूपकी उपासना करता है, वहभी निष्कामभावसे प्राणिमात्रके हितमें कर्त्तव्य करते हुए मुझे ही प्राप्त करता है।

"हे पार्थ ! जिसका चित्त अव्यक्तमें लगा हुआ है, उन्हें कष्ट अधिक होता है। देहधारीके लिए अव्यक्तगति कष्टसाध्य है। परन्तु जो मुझमें परायण रहकर, सभी कर्म मुझे समर्पण करके, निष्ठापूर्वक मेरा ध्यान धरते हुए, मेरी उपासना करते हैं और मुझमें ही अपने चित्तको लगाये रहते हैं, उन्हें निश्चितही मैं मृत्युरूपी संसार-सागरसे शीघ्रही पार कर लेता हूँ। इसलिए अपना मन मुझमें लगा और अपनी बुद्धि मुझमें ही रख। इससे निःसन्देह तू इस जन्मके बाद मुझे ही पावेगा।"

मनको स्थिर न कर पानेकी स्थितिमें भगवान्‌ने अर्जुनको अभ्यासयोग द्वारा अपने प्राप्त होनेका मार्ग बतलाया और यह भी कहा कि "यदि अभ्यास रखनेमें भी तू असमर्थ है, तो कर्म मात्र मुझे अर्पण करके, मेरे निमित्त कर्म करते हुए, तू मोक्षको प्राप्त कर लेगा। यदि मेरे निमित्त कर्म करनेकी भी तेरी सामर्थ्य न हो तो मात्र सब कर्मोंके फलका त्याग कर।"

भगवान्‌ने स्पष्ट किया कि "अभ्यासमार्गसे ज्ञानमार्ग श्रेयस्कर है। ज्ञानमार्गसे ध्यानमार्ग विशेष है और ध्यानमार्गसे कर्मफल-त्याग श्रेष्ठ है। क्योंकि त्यागसे तत्काल शान्ति प्राप्त होती है।"

"जो प्राणिमात्रके प्रति द्वेष, ममता और अहंकाररहित, दयावान, सुख-दुखमें समान, सदा सन्तोषी, योगयुक्त, इन्द्रियनिग्रही एवम् दृढ़-निश्चयी है तथा जिससे लोग उद्वेग नहीं पाते, जो लोगोंसे उद्वेग नहीं पाता; जो हर्ष, क्रोध, ईर्ष्या, भय तथा उद्वेगसे पूर्ण मुक्त है; वह निश्चयही मुझे पाता है। जो इच्छारहित, दक्ष, तटस्थ और चिन्तारहित है एवम् जिसने संकल्पमात्रका त्यागकर दिया है, वह मेरा प्रिय भक्त है। जो शत्रु-मित्र, मान-अपमान. शीत-उष्ण, सुख-दुख इन सबमें समतावान है, जिसने आसक्तिका त्यागकर दिया है, जो निन्दा-स्तुतिमें समान-भावसे रहता है, जिसका अपना कोई निजी स्थान नहीं है और जो स्थिर चित्तवाला है, ऐसा मुनि-भक्त मुझे बहुत प्रिय है।"

इस प्रकार यह पवित्र अमृतरूप-ज्ञान भगवान्‌ने अर्जुनको दिया और कहा कि "जो मुझमें परायण रहकर श्रद्धापूर्वक इस ज्ञानका सेवन करते हैं, वे मेरे अतिशय प्रिय बनकर मेरे अन्तरमें निवास करते हैं।

*श्रद्धा-सुमन

युगल-वन्दन

—कृष्णा माँ

अर्चन करउ स्वामिनी राधा।
ह्लादिनि-शक्ति परम सुखखानी, बानी प्रम अगाधा।
तारिनि-जग, विस्तारिनि-ब्रज रस, हारिनि-भय, भव-बाधा।
कुंज-बिहारिनि, पिय-उरधारिनि, अवतारिनि-रस साधा।
मोहति मनमोहन मनमोहिनि 'कृष्णा' नित आराधा॥

हरिके, जुग-जुग जुगपद नाऊँ।
जिनको आदि न मध्य अन्त कहुँ, अगम अनन्त लखाऊ।
जिनके डर नाचत सचराचर, निगमागम नित पाऊँ।
जेहि नित जाचति विधि, सुक, सम्भू, अति दुर्लभ ब्रज ठाऊँ।
इमि 'कृष्णा' निज भाग्य सराहत, पाइ प्रीति पद छाऊँ॥

अमृत-वाणी

महर्षि रमण

देवदत्त शास्त्रीने काशीमें निवास करके गीताका गहन अध्ययन किया था। वापस घर लौटनेपर वे अपने राजाके यहाँ भेंट करने गए। राजाने शास्त्रीजीका बड़ा आदर-सत्कार किया। शास्त्रीजीने प्रस्ताव किया कि राजा उनसे गीताका भाष्य सुने। राजाने उत्तर दिया कि आप सात वार गीता पढ़कर मेरे पास आइए तो मैं आपका भाष्य सुनूँगा।

देवदत्त शास्त्रीको राजाका यह उत्तर बड़ा अपमानजनक लगा। उन्होंने पत्नीसे अपनी व्यथा कही। पत्नीको राजाके उत्तरसे आश्चर्य तो हुआ, किन्तु उसने शास्त्रीजीके लिए उचित समझा कि वे सात वार गीता पढ़कर ही राजाके पास जायें।

शास्त्रीजीने राजाके आदेशका पालन कर फिर राजाके कक्षमें प्रवेश किया और राजाको गीता समझानेका अपना पुराना प्रस्ताव दोहराया। राजाने एक तीखी नजरसे शास्त्रीजीको देखा और मुस्कराते हुए कहा—'आपका प्रस्ताव मुझे स्वीकार है, किन्तु अगली वार जब आप आयें तो सात वार और गीता पढ़कर आएँ।'

देवदत्त शास्त्रीको जैसे बिच्छूने डंक मार दिया। किन्तु पत्नीने फिर आग्रह किया कि राजाने बुलाया है, यह उसकी कृपाही है। आप सात वार और गीता-पाठ क्यों नहीं कर लेते हैं— शायद इसमें कोई रहस्य हो।

शास्त्रीजी जंगलमें एकांतवास करके गीता-पाठ करने लगे। इस वार वे गीताके प्रत्येक श्लोकमें गहरे पैठकर रहस्य खोजने लगे। दो पाठ के बाद उन्हें लगा कि राजाके यहाँ जाकर उन्होंने कितनी बड़ी गलती की है। क्या गीता व्याख्याकी ही वस्तु है। यह तो कामधेनु है— जितना दुहिए, उतना ही दूध उसमें पाइये। मनकी तृप्तिका दूध ! आत्माकी शक्तिका दूध ! मैंने बुरा किया जो गीताको बेचनेके लिए राजाके दरबारमें गया। क्या कामधेनु बेचने लायक गाय है ?

शास्त्रीजी जब राजाके यहाँ कई महीनों तक नहीं गये तो खोजते-खोजते राजा खुद उनके पास पहुंच गया और चरणोंमें सिर नवाकर बोला—'आप अब भगवान् कृष्ण के प्रतीक हैं, कृष्णस्वरूप हैं। अब जो आपके मुखसे निकलेगा, अर्जुनको सम्बोधित कृष्णका गीता-ज्ञान ही निकलेगा !'

मेरे आराध्य !

स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती

श्रीकृष्ण ! मुझे मालूम नहीं, कुछ-कुछ मालूम होनेपर भी याद नहीं आता कि मैं तुमसे कबसे बिछुड़ा हुआ हूँ ! युगपर युग बीत गये, जन्मपर जन्म बीत गये। कभी तिनका होकर लोगोंके पैरोंके नीचे कुचला जाता रहा, कभी लकड़ी बनकर आगमें जलता रहा। कभी कीड़े-मकोड़े बनकर लोगोंको सताता रहा, कभी समुद्रकी उत्ताल तरंगोंमें बहता रहा और कभी अनेकों पशु-पक्षियोंकी योनियोंमें पैदा होकर लोगोंके द्वारा विताड़ित होता रहा। न जाने किस-किसको पुकारा, किसके-किसके चरणोंकी शरण ली, परन्तु तुम्हें नहीं पुकारा। कई बार स्त्री होकर लोगोंका भोग्य बना और न जाने कितनी बार पुरुष होकर कितनोंकी चापलूसी करता रहा। श्रीकृष्ण ! एक बारभी सच्चे हृदयसे मैंने तुम्हारे चरणोंकी शरण नहीं ली। एक बारभी आर्त्त स्वरसे तुम्हें नहीं पुकारा। पुकारनेकी इच्छाभी नहीं हुई ! मैं जलते हुए लोहेके द्रवको अमृत समझकर पीनेके लिए दौड़ा, उससे जलकर जलते हुए सोनेके द्रवकी ओर दौड़ा, उससे लौटकर खारे समुद्रमें कूद पड़ा और वहाँभी भूखा-प्यासा रहकर अनेक जल-जन्तुओंसे विताड़ित हुआ। कहाँ नहीं गया, किसके दरवाजेपर मैंने सिर नहीं पटका ? परन्तु हायरी मेरी दुर्बुद्धि ! एक बारभी तुम जैसे सच्चे स्वामीकी स्मृति नहीं की।

यह सब होता रहा, इस सब दौड़-धूपके अंदर एक प्रेरणा थी श्रीकृष्णकी। हाँ ! श्रीकृष्ण !! तुम्हारीही प्रेरणा थी। तुम हृदयमें बैठकर यही प्रेरणा कर रहे थे कि मैं सच्चा सुख पाऊँ, सच्ची शान्ति पाऊँ और अपने स्वामीकी सन्निधिमें जाकर अपने प्रियतमका आलिंगन पाकर सर्वदाके लिए उनके हृदयसे सट जाऊँ, एक हो जाऊँ। यह इच्छा तुम्हारी दी हुई इच्छा थी। परन्तु मैं इतना पागल था कि यह नहीं समझ रहा था कि किसके पास जानेसे यह इच्छा पूरी होती है। मैं बिना जाने अनजान पथसे चल पड़ा और ढूँढ़ने लगा उन विषयोंमें सुख और शान्तिको, जहाँ स्वप्नमें भी उनके दर्शन नहीं हो सकते।

परन्तु अब मैं समझ गया। यह कैसे कहूँ कि मैं समझ गया ? तुम्हारे प्रेमियोंसे सुनता हूँ, तुम्हारे प्रेमियोंने जो कुछ तुम्हारा संदेश सुनाया है, उससे अनुमान करता हूँ कि मेरी इच्छा, अनन्त आनन्द और सुखकी अभिलाषा सच्ची थी। फिर भी मेरा मार्ग ठीक न था, मैं मरुस्थलमें पानी ढूँढ़ रहा था। मैं संसारमें सुखके लिए भटक रहा था। भला संसारमें सुख कहाँ ? भटक चुका, खूब भटक चुका, जान गया कि सुख तो तुम्हारे चरणोंमें ही है।

अब प्रभो ! तुम्हारे चरणोंमें आगया हूँ, ये तुम्हारे लाल तलुवे, ये तुम्हारे कमलसे कोमल चरण सर्वदा मेरे हृदयसे सटे रहें, इनकी शीतलतासे मेरे हृदयकी धधकती हुई आग शान्त हो जाय। प्रियतम ! एकबार मेरे वक्षस्थलपर अपने चरणोंको रखदो न ! रखदो, बस मेरी एकवात मान लो !

मैं भी कैसा अज्ञानी हूँ ! हृदयकी तहमें तो अब भी विषयोंकी लालसा है और वाणीसे तुम्हारी प्रार्थना कर रहा हूँ। इसीसे मालूम होता है श्रीकृष्ण ! कि तुम दूरसे ही मुझे देखकर हँस रहे हो और मेरे पास नहीं आ रहे हो। मैंने तुम्हारे प्रेमियोंके द्वारा, तुम्हारे दूतोंके द्वारा सुने हुए सन्देशको सच्चे रूपमें अभी ग्रहण नहीं किया है। थोड़ी देरके लिए उन सन्देशोंको सुन लेनेपर भी मनने उन्हें ठीक रूपसे ग्रहण नहीं किया है। यदि मन तुम्हारे सन्देशको सत्य मानता, उसका विश्वास हो जाता कि सच्चा रस तो श्रीकृष्णके स्मरणमें ही है, यदि वह अनुभवकर लेता कि विषयोंमें रस नहीं है, तो फिर वह कभी स्वप्नमें भी विषयोंकी ओर नहीं जाता, तुम्हारे चरणोंका रस लेनेमें ही मत्त होता ! ऐसा नहीं होता, जैसाकि मनकी आज स्थिति है। श्रीकृष्ण ! परन्तु मैं करूँ ही क्या ? मनको मनाना मेरे हाथमें तो है नहीं, वह बड़ा बलवान है, अपने हठपर डटा हुआ है। काम, क्रोध, लोभ आदिसे उसने दोस्ती कर रखी है, वह तुम्हारा सन्देश सुनकर भी अनसुना कर देता है। सब कुछ देखते-सुनते हुएभी उसी मार्गसे चलने लगता है, जिससे चलनेका उसे अभ्यास हो गया है।

इसका एक उपाय है, तुम सन्देश मत भेजो। आओ, स्वयं आओ, मेरी बात तो सुन ही रहे हो न ! एक क्षणके लिए मेरी आँखोंके सामने प्रकट हो जाओ। थोड़ी देरके लिए मेरे हृदयमें आकर बैठ जाओ और सन्देशके स्थानपर अपने मुँहसे तुम मनको आदेश दे दो कि मन, तुम मेरे हो, मेरी सेवामें रहो, एक क्षण भी मुझे छोड़कर मत जाया करो। मेरे सर्वस्व ! मेरे श्रीकृष्ण ! वह तुम्हारी आज्ञा मानेगा। मेरा विश्वास है, तुम्हारी आज्ञा अवश्य मानेगा। करदो न ऐसा ही ? मैं सर्वदाके लिए तुम्हारे चरणोंकी सन्निधि पाजाऊँ। श्रीकृष्ण, क्या कहते हो ? मेरा हृदय कलुषित है, वह तुम्हारे आने योग्य नहीं है। मेरी आँखें दूषित हैं, वे तुम्हारा दर्शन करने योग्य नहीं हुई हैं, परन्तु मेरा वश क्या है ? मेरी आँखों और हृदयको शुद्ध करनेवाला और है ही कौन? तुम स्वयं पवित्र करलो और आ जाओ। यदि उनके शुद्ध होनेपर ही तुम आओगे, तब तो मैं करोड़ों कल्पमें भी तुम्हारे दर्शनोंका अधिकारी नहीं बन सकूंगा। श्रीकृष्ण, तुम बड़े दयालु हो, बड़े भक्तवत्सल हो। तुमने स्वयं स्वीकार किया है कि मैं प्रेम-परवश हूँ। परन्तु मैं भूल कर रहा था, मैं भक्त नहीं हूँ, मैं तुमसे प्रेमभी नहीं करता। मैं सच्चे हृदयसे अपनेको दयापात्र भी नहीं मानता। कहाँ है मुझमें दीनता ? मैं तो अभिमानका पुतला हूँ। तब क्या मुझपर दया नहीं करोगे। श्रीकृष्ण, इसी अवस्थामें तो मैं वास्तवमें दयाका पात्र हूँ। यदि मैं अपनेको दयापात्र समझता, तब तो दयापात्र होता ही। उसमें तुम्हारी दयालुता क्या होती ? मेरी दशा तो इतनी दयनीय होगई है कि मैं अपनेको दयापात्र भी नहीं समझता, इसलिए मैं और भी दयाका पात्र हो गया हूँ।

जैसे भयकर रोगसे ग्रस्त प्राणी उन्मादके कारण अपने रोगको नहीं समझ पाता और इसीसे लाग उसपर विशेष दया करते हैं, वैसेही अज्ञानवश अपने रोगको न समझने वाला मैं क्या तुम्हारा विशेप दयापात्र नहीं ?

मैंने तुम्हारी लीला सुनी है, मैंने तुम्हारी कथा सुनी है। तुम पतितोंको पतित-पावन बना देते हो, अधमोंको अधमोंके उद्धारका साधन बना देते हो। तुम प्रेमियोंके नाचनेपर नाचते हो और वे जो-जो कहते हैं, करते हो। मैं तुम्हारे चरणोंके पास लोटकर तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ। उठालो मुझे, एक बार कहदो, तुम मेरे हो। अपना लो न प्रभु ! सब संसार तो तुम्हारा है ही। तो क्या मुझे ही बाहर रखना चाहते हो ? मैं भी तुम्हारा ही हूँ। फिर यह कहनेमें क्यों देर करते हो ? स्वामिन् ! तुम मुस्करा रहे हो ! क्यों मुस्करा रहे हो? क्या मेरे अज्ञानपर ! हाँ, मैं हँसने ही योग्य हूँ। तुम्हीं इशारा कर रहे हो न कि तू तो मेरा है ही, सभी अवस्थाओंमें मेरा रहा, मैंने कभी तुझे छोड़ा नहीं। तुम यही कह रहे हो न नाथ ! कि पाप करते समयमें भी मैं तेरे साथ रहा। तेरे पीछे खड़ा होकर तुझे देखता रहा, एक क्षणके लिएभी तुझे नहीं छोड़ा। मैं तुझे प्रेम करता हूँ और तूने ही मुझे छोड़ दिया है, मेरी ओरसे आँखें बन्द करली हैं। तू संसारकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गया है और तूने मेरी ओर देखना ही छोड़ दिया है। सत्य है प्रभो ! तुम्हारा कहना ठीक है, तुमने मुझे नहीं छोड़ा, तुमने मुझपर अमृतकी वर्षाकी। मेरे साथ तुम्हें ऐसे स्थानोंमें भी जाना पड़ा, जहाँ तुम्हें नहीं जाना चाहिए था। परन्तु हे अनन्तस्वरूप ! अब मेरी त्रुटिपर, मेरे अपराधपर दृष्टि मत डालो, यह शरीर, ये इन्द्रियाँ, ये प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, आत्मा जो कुछ भी मैं था, हूँ और होऊँगा, वह सब तुम्हारा ही था, तुम्हारा ही है और तुम्हारा ही होगा। अब ऐसी कृपा करो कि मैं इस सत्यपर स्थिर हो जाऊँ और प्रतिक्षण तुम्हारे चरण-कमलोंको अपने हृदयसे सटाये रहूँ। मेरे जीवन-सर्वस्व ! मेरे प्राणोंके प्राण ! मेरे स्वामी ! मेरे हृदयमें प्रेमकी ऐसी ज्वाला जगादो, जिसमें मेरी सारी अहंता और ममता जलकर खाक हो जाय, हृदयके मन्दिरमें तुम्हें बैठने की जगह बन जाय। प्रियतम ! अपना ऐसा विरह दो, कि सारा हृदय आँसू बनकर आँखोंको धो डाले और आँखें सर्वत्र, सर्वदा तुम्हारी अनूप रूपराशिका मधु पीकर छक जायें।

प्रभो ! दे दो न अपने लिए व्याकुलता ? मैं तुम्हारे लिए तड़फड़ाता हुआ घूमा करू —

हे नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज !
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तनाशनम् !
मामुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥
हे देव हे दयित हे भुवनैक बन्धो !
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैक सिन्धो !
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम !

हा हा कदानुभवितासि पदं दृशोर्नः ।।
युगायितं निमेषेण चक्षषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत् सर्वम् गोविन्द विरहेण मे ।।

श्रीकृष्ण ! ये आँखें तुम्हारे अतिरिक्त और किसीको क्यों देखती हैं ? चाहे तो तुम इनके सामने आओ और चाहे इन्हें जलादो । यह वाणी दूसरेका नाम क्यों लेती है ? चाहे तो इससे तुम्हारा ही नाम निकले और चाहे यह नष्ट हो जाय । श्रीकृष्ण ! मेरे कान तुम्हारा ही मधुर आलाप सुनें, तुम्हारी ही बाँसुरीकी तान सुनें या बहरे हो जायँ । मेरी चित्तवृत्ति और किसीको न देखे, न सुने, न स्पर्श करे । मेरी क्यों ! यह तुम्हारी ही चित्तवृत्ति है, लगालो अपने चरणोंमें प्रभो ! मेरे दयालु प्रभु ! मेरे प्रेमी प्रभु ! लगा लो न, रहा नहीं जाता, विवश हो रहा है चित्त, एकबार तो कृपा करदो । कृपा तो तुम्हें करनी ही है । बिना कृपा किये तो तुम रह ही नहीं सकते, फिर देर क्यों कर रहे हो ? अभी कर दो न ? यह देखो, एकटक आँखें खोले, मुँह बाये तुम्हारी ओर देख रहा हूँ । मेरे प्यारे कृष्ण ! प्यारे कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण !

सच्चिदानन्द

आत्मा सत् है, इसलिए जीना और जिलाना उसका स्वभाव है। आत्मा चित् है, इसलिए जानना और जनाना उसका स्वभाव है । आत्मा आनन्द-स्वरूप है, इसलिए आनन्दित रहना और आनन्द देना उसका स्वभाव है । इसका अर्थ यह है कि जीवनमें निम्न छः बातें आवश्यक हैं-- जियो और जीने दो, जानो और जानने दो, सुखी रहो और सुखी रहने दो । यही सच्चिदानन्दका व्यावहारिक स्वरूप है ।

आत्मामें माया नहीं है, इसका अर्थ है, कि जीवनमें कपटके लिए कोई स्थान नहीं है । वेदान्त शुद्ध जीवनका प्रेरणा-स्रोत है । अतः कपटका परित्याग करो । किसीको धोखा न दो ।

—स्वामी अखण्डानन्द महाराज
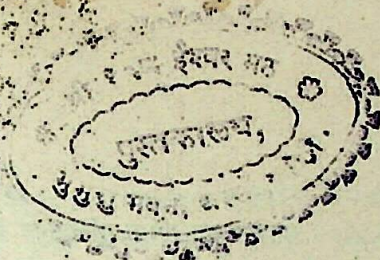
मानस-मुक्ता

श्री राम किङ्कर उपाध्याय

राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
विधि-निषेध मय कलिमल हरनी। करम कथा रवि-नन्दिनि बरनी॥

उक्त पंक्तियों द्वारा गोस्वामीजीकी समन्वय-साधना और ज्ञान, कर्म तथा भक्ति-सम्बन्धी मान्यताओंपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अधिकांश तीर्थोंका सम्बन्ध किसी-न-किसी नदीसे है। किन्तु तीर्थराजमें तीन नदियोंका अनोखा संगम है। वे तीनों हैं गंगा, यमुना और सरस्वती। इस संगमसे ही गोस्वामीजी समन्वयका सूत्र ग्रहण करते हैं। तीर्थ और तीर्थराजकी तुलना सम्भवतः वे आचार्य और सन्त-परम्परासे करते हैं। आचार्योंने ज्ञान, भक्ति अथवा कर्ममें से किसी एककी श्रेष्ठता स्वीकारकर, उसकी विशिष्टताके पक्षको समाजके समक्ष उपस्थित किया है। किन्तु सन्त-परम्पराने ज्ञान, भक्ति और कर्मके समन्वयको ही मंगलके लिए आवश्यक माना है।

गगा जब ब्रह्माके कमण्डलसे विनिःसृत होकर मृत्युलोककी ओर चलीं, तब प्रत्येकके अन्तःकरणमें यह भय समाया हुआ था कि मृत्युलोकमें अपने वेगको रोक पाना क्या सम्भव होगा? कहीं ऐसा न हो कि पृथ्वीपर आकर भी वे टिक न सकें और उनकी वेगवती धारा पातालमें समा जाय। भागीरथकी प्रार्थनापर भगवान् शिवने यह गुरुतर भार उठाना स्वीकार कर लिया। वेगवती गंगा ब्रह्मलोकसे उतरकर भूतभावन शंकरकी जटामें स्थित हो गयीं। इस तरह शिवकी जटाही गंगाकी आधारभूमि बनी। गंगाकी भाँति भक्तिकी दुर्लभताका शास्त्रोंमें वर्णन प्राप्त होता है। रामचरितमानसमें भी भक्तिकी दुर्लभताके समर्थनमें अनेक पंक्तियाँ उपलब्ध हैं:

सब ते दुर्लभ सो खगराया। राम-भगति-रस गत-मद-पाया॥

इस दुर्लभ भक्तिका साधारण जनके लिए सुलभ हो सकना असम्भव-सा प्रतीत होता था, किन्तु जब यही भक्ति-गंगा विज्ञानके ब्रह्मलोकको छोड़कर विश्वासके जटा-जूटमें स्थित होती हैं, तब वे लोक-कल्याणके लिए सुलभ हो जाती हैं। अब भक्तिके लिए विज्ञान नहीं, विश्वासकी आवश्यकता है:

बिनु बिश्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह बिश्राम॥

यह मान्यता सर्वथा युक्तिसंगत है। बड़ा होकर व्यक्ति जिसे पुरुषार्थ या ज्ञानके माध्यमसे पाता है, नन्हा बालक समर्थ होते हुए भी विश्वासके बलपर वही सब-कुछ पा लेता है। उसे अपनी योग्यतापर कोई भरोसा नहीं होता, किन्तु माँके वात्सल्यका विश्वास ही उसे निश्चिन्त बना देता है। विज्ञानके स्थानपर विश्वासपर आधारित यह भक्तिही गंगाके समान अवतीर्ण होकर जन-जनको धन्य बनाती है। साधारण व्यक्तिके लिए ब्रह्मका दार्शनिक विवेचन ग्रहण कर पाना सम्भव नहीं है। उसके लिए तो कृतज्ञतापूर्वक उनके गुणोंमें गोते लगा लेनाही यथेष्ट है। एक साधारण ग्रामीण गद्‌गद-भावसे गंगामें गोते लगाता हुआ स्वयंको शीतल और पापमुक्त अनुभव करता है। विनयपत्रिकामें गोस्वामीजीने भक्तिकी दुर्लभताकी ओर इंगित करते हुए जिस भक्तिका वर्णन किया है, वह ब्रह्मलोकवासिनी गंगाकी भाँति है :

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानै सोई जेहि बनि आई॥
जो जेहि कला कुसलता कहँ सोइ, सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी॥
ज्यों सर्करा मिले सिकता महँ, बलतें न कोऊ बिलगावै।
अति रसग्य सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत बियोगी॥
सोक मोह भय हरष दिवस-निसि, देसकाल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन, संसय निर्मूल न जाहीं॥

इसके विपरीत रामचरितमानसमें भक्तिकी सुलभताकी ओर संकेत करनेवाली निम्न पंक्ति प्रस्तुत की जा सकती है :

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
× × ×
भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

यह भक्ति-गंगाका वह रूप है, जो साधारण मर्त्यधर्मा मानवको भी आश्वस्त करता है कि वह भी प्रभुकी कृपाका अधिकारी हो सकता है। सन्त-समाज प्रधानतः इसी भक्तिका प्रचारक है। हिम-गिरिके शिखरोंसे तीर्थराज प्रयाग तक पहुँचते-पहुँचते गंगामें, अनगिनत नदी-नाले मिलकर उनसे एकाकार हो जाते हैं। अपने तटपर स्थित लक्ष-लक्ष निवासियोंके जीवनकी हर परिस्थितिमें वह सहायिका हैं। स्वार्थ और परमार्थ दोनोंकी सिद्धिके लिए प्राणी गंगाका आश्रय ग्रहण करता है। सन्तति न होने पर भोलीभाली नारियाँ गंगाकी मनौती मनाती हैं और लोक-गीतोंमें उन्हें गंगाका आशीर्वाद प्राप्त होता है—"नवएं महीने हरिल तोहें होइ हैं", तब वे यह आशीर्वाद पाकर गद्‌गद हो जाती हैं। गंगा किसानके लिए धान्य देती है। उनका जल स्वच्छता और तृप्ति देता है। न केवल जीवन-कालमें ही, अपितु

मृत्युकी वेलामें भी गंगा-तटपर पहुँचनेकी बलवती आकांक्षा उसे व्याकुल बना देती है। गंगा-तटपर उसकी चिता सजायी जाती है एवं भस्म होकर राखके रूपमें परिणत उसका शरीर गंगामें प्रवाहित हो जाता है। उसका यह विश्वास है कि जीवनमें उससे अनगिनत त्रुटियाँ क्यों न हुई हों, किन्तु पतितपावनी गंगाके स्पर्शसे वे धुल चुकी हैं। उसे मृत्युके पश्चात् भी विष्णु अथवा शिव-लोकही प्राप्त होगा। यह विश्वास रहीमको इतना अनुप्राणित करता है कि वे गंगासे कह उठते हैं—"माँ, मैं जानता हूँ कि मृत्युके पश्चात् तुम्हारी कृपासे शिव अथवा विष्णु ही बनूँगा, पर मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे शिव बनाना, विष्णु नहीं। विष्णु-रूपमें तुम मेरे चरणोंमें रहो, यह मुझे असह्य है। मैं तो यही चाहता हूँ कि शिव बनकर सर्वदा तुम्हें अपने मस्तकपर धारण किये रहूँ।"

अच्युत चरण तरंगिनि, सिव सिर मालति माल।
मोहि न बनायउ सुरसरि, कीजिय ऐन्दव भाल॥

कवितावलीमें गोस्वामीजीका भी यही स्वर गूँजता है :

बारि तिहारी निहारि मुरारि भएँ परसें पद पापु लहौंगो।
ईसु ह्वै सीसु धरौं पै डरौं प्रभुकी समता बड़े दोष दहौंगो॥
बरु बारहिं बार सरीर धरौं रघुबीरको ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं कर जोरि बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥

वात्सल्यमयी भक्ति-गंगाके प्रतिभी यही श्रद्धा जन-मनको अनुप्राणित करती है। वह अपनी छोटी-से-छोटी आवश्यकताओंके लिए भी प्रभुसे प्रार्थना करता है। न केवल परमार्थ, अपितु स्वार्थभी भगवत्कृपासे सिद्ध हो सकता है, यह आश्वासन उसे आत्मग्लानिसे बचाता है। उसे यह ज्ञात है कि माँगनेपर समाजमें व्यक्तिका सम्मान नहीं रह जाता, किन्तु सन्त उसे आश्वासन देता है कि एक-मात्र प्रभु श्रीराम ही ऐसे उदार हैं, जो माँगनेवालेको भी सम्मान देते हैं। विभीषण और सुग्रीव जैसे व्यक्ति भी, जो राज्य किंवा अन्य वासनाओंसे प्रेरित होकर प्रभुकी शरणमें आये थे, कामनाकी पूर्तिके साथ-साथ मित्र बनाये जानेका सम्मानभी प्राप्त करते हैं। भक्तोंकी गणनामें न केवल जिज्ञासु और ज्ञानियोंका नाम लिया गया है, अपितु आर्त और अर्थार्थी भी उसी श्रेणीमें गिन लिये गये हैं।

राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥

भक्ति-गंगाकी यह उदारता ही व्यक्तिको अपनी ओर आकृष्ट करती है।

सरस्वती ब्रह्म-विचारका प्रतीक है। तीर्थराज प्रयागमें गंगा और यमुनाका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। किन्तु पौराणिक श्रद्धा एक तृतीय नदीकी उपस्थितिका भी वर्णन करती है, वह है सरस्वती। जो दृष्टिगोचर है, उसकी सत्ताको स्वीकार कर लेना ही आस्तिकता नहीं है। प्रत्यक्षके प्रति आग्रहका अतिरेक ही नास्तिकताका मूल आधार है। दृष्टिगोचर न होनेवाला ईश्वर नास्तिकके लिए कोई अर्थ नहीं रखता। किन्तु आस्तिकके लिए सर्वाधिक महत्व उसका ही है, जो दिखाई तो नहीं देता, किन्तु जिसके प्रकाशमें समस्त विश्व-प्रपंच

दिखायी देता है। ज्ञानका प्रतिपाद्य भी निर्गुण-निराकार ब्रह्म है। अमूर्त ब्रह्मके निरूपणका सर्वश्रेष्ठ प्रतीक सरस्वती ही है, जो स्वयंभी अमूर्त है। भक्तिका मुख्य आधार सगुण-साकार ब्रह्म है, अतः उसके निर्वचनके लिए गंगाका आश्रयभी स्वाभाविकही है। गंगा और सरस्वतीका यह संगम निर्गुण और सगुणके एकत्वकी ओर इंगित करता है। ज्ञानकी पवित्रताके साथ-साथ उसकी गुह्यताका परिचय भी इस प्रतीकके द्वारा प्राप्त होता है। ज्ञान दुर्लभ है। भक्तिके समान उसमें सुलभताका तत्व नहीं है :

कहहिं सन्त मुनि बेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना ॥

सन्त-समाजमें, जहाँ भक्ति और कर्मका खुला निरूपण होता है, वहाँ ज्ञानके निरूपणमें गोप्यताका आश्रय लिया जाता है। ज्ञानका अधिकार कठिनाईसे प्राप्त होता है। अशुद्ध बुद्धिमें ज्ञान अभिमानकी सृष्टि करता है। बात समझमें आने-जैसी है। भक्तिका प्रतिपाद्य ईश्वर और उसका गौरव है। ईश्वरकी महत्ता एवं स्वयंकी लघुताके मानसे भक्तिका उदय होता है। कर्मका उद्देश्य विराट्का परिचय देते हुए व्यक्तिको कर्त्तव्यका भान कराना है। व्यक्ति विराट् विश्व और समाजका एक अंग है। अंगका कर्त्तव्य है कि वह सारे शरीरकी सेवाके लिए कार्य करे। अतः भक्ति और कर्मका निरूपण प्रत्येकके लिए उपादेय है, किन्तु ज्ञान तो जीव और ब्रह्मके एकत्वका दर्शन है :

'सोऽहमस्मि' इति बृत्ति अखण्डा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचण्डा ॥

एकत्वकी दीप-शिखाके प्रकाशमें व्यक्ति उलझी हुई ग्रन्थिको सुलझा ले, यही उसका उद्‌देश्य है। पर दीप-शिखाकी प्रचण्ड लौ कहीं आग न लगादे, इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है। एकमात्र शुद्ध 'अहं'का पूर्ण बोध सच्चा ज्ञान है; पर जिस 'अहं'के हम अभ्यस्त हैं, द्वैतके बिना उसकी स्थिति नहीं हो सकती। उस 'अहं'का आश्रय दूसरेकी क्षुद्रता है। बुद्धिमत्ताके अहंके लिए बुद्धिहीन चाहिए। बलवन्ताका अहंकार निर्बलके समक्षही प्रकट होता है। यही स्थिति धनकी है। ज्ञानकी मुख्य समस्या यही है कि पूर्ण अहंके स्थानपर व्यक्ति ज्ञानी होनेका परिच्छिन्न अभिमान न पाल ले। बहुधा ऐसाही होता है। अतः एक ओर जहाँ ज्ञानकी परिभाषा ही परिच्छिन्नताके अभिमानका अभाव है, वहाँ ज्ञानके अभिमानमें उन्मत्त होनेवालोंका मानसमें वर्णन किया गया है :

ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥

× × ×

जे ज्ञान मान बिमत्त तव भव हरणि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥

क्रमशः

थाईदेशमें भगवान् वेदका शुभागमन

परमपूज्य महाराज गंगेश्वरानन्दजीका धार्मिक-अभियान

"इस अत्यन्त प्राचीनदेश, शामदेशमें, जो सप्त वैदिक ऋषियोंमें से एकका देश था, भगवान् वेदका शुभागमन हुआ है। महान् वैदिक वामदेव ब्राह्मण-कुलके वंशज होनेके नाते, मैं प्राचीन ज्ञान और श्रुतिके इस दीर्घकालसे लुप्त भण्डारका स्वागत करते हुए अत्यन्त प्रसन्न हूँ।"

इन भावविह्वल शब्दोंमें तथा सजल नेत्रोंसे थाईदेशके नरेश अतुल्यतेज भूमिपाल रामनवम्के राजगुरु वामदेवने १९की दुपहरको भारतीयराजदूत महामहिम श्रीरमेश भण्डारीके कर-कमलोंसे गुरु गंगेश्वर चतुर्वेद संस्थान तथा भारतके महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्द द्वारा स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय वेद मिशनकी ओरसे पवित्र वेदोंकी प्रतियोंकी भेंट स्वीकार करते हुए अपने हृदयोद्गार व्यक्त किये।

९४-वर्षीय प्रज्ञाचक्षु (पाँचवे वर्षसे अंधावस्थाको प्राप्त) परमपूज्य स्वामी श्री गंगेश्वरानन्द, जो प्रख्यात उदासीन सम्प्रदायके १८२वें धर्मगुरु हैं, आजकल दक्षिण-पूर्वी एशियाकी यात्रा कर रहे हैं–हिन्दुओंके सर्वाधिक पवित्र ग्रन्थ वेदोंका प्रचार करने तथा उनकी प्रतियाँ भेंट करनेके उद्देश्यसे। स्वामीजीके साथ उनके दो शिष्य स्वामी गोविंदानन्द और श्रीमती रतन फौजदार तथा विश्व हिन्दू परिषद्के सचिव श्री दादा आपटे हैं। अपनी इस यात्राके दौरान, जो विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा आयोजित की गयी थी, यह दल १६की शाम को बंगकोक आया।

स्वामीजीके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप, पहली बार चारों वेदोंका संकलन और प्रकाशन १००० पृष्ठोंके एक विशाल ग्रन्थमें हुआ है। १५"×२०" आकारके, विशेष रूपसे निर्मित आर्ट-पेपर पर इस ग्रन्थका मुद्रण हुआ है। इस अद्वितीय, पवित्र ग्रन्थमें संस्कृतके २०,००० से अधिक मन्त्र हैं। कलात्मक किनारों पर, वैदिक-यज्ञोंमें प्रयुक्त होनेवाले विविध उपकरणों और पोतोंको चित्रांकित किया गया है। एक ग्रन्थके रूपमें सुबद्ध इस पवित्र ग्रन्थ का भार २२ किलो है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, यह ग्रन्थ सर्वाधिक विशाल, भारवाला ग्रन्थतो है ही, असंदिग्ध रूपसे मानवताका प्राचीनतम ऐतिहासिक और धार्मिक ग्रन्थ भी है।

नेपाल समेत भारतमें ६०८ स्थानोंपर इस ग्रन्थको प्रतिष्ठापित करनेके बाद, स्वामी गंगेश्वरानन्दजी आज पूर्वकी यात्रा कर रहे हैं। इस यात्राके बाद, वे पश्चिमकी यात्रा करेंगे, विश्व भरमें वेदोंकी प्रतिष्ठापना करनेकी अपनी सद्योजनाको क्रियान्वित करनेके क्रम में।

यहाँके राजगुरु वामदेव मन्दिरमें, ब्रह्माण्डके सृजक ब्रह्मदेवको सब देवताओंमें अग्रणी दिखाया गया है। इस अर्थगर्भित स्थितिका उल्लेख करते हुए, स्वामीजीने वेदोपहार-समारोह के अवसरपर दियेगये भाषणमें कहा, "यहाँके अधिष्ठाता देवता ब्रह्मदेव हैं। उनके मनमें यह विचार अवश्य होगा, 'वेद मेरे ज्ञान-भण्डार हैं, और मुझे उनकी पुनर्प्राप्ति अवश्य होनी चाहिए।' मुझे लगता है कि यहाँ आकर, उन्हें वेदोंको अर्पण करनेकी प्रेरणा मुझे स्वयं उन्होंनेही दी है। मुझे इस बातकी अत्यन्त प्रसन्नता है कि विश्वभरमें वेदोंके प्रचारकी अपनी योजनाका शुभारम्भ मैं ब्रह्मदेवके आशीर्वादके साथ कर रहा हूँ।"

वेदविहीन ब्राह्मण

स्वामीजीके भाषणका कृतज्ञतापूर्ण उत्तर देते हुए राजगुरुने कहा, "यहाँ रहने वाले हम ब्राह्मणोंको यह कष्टदायक अनुभूति थी कि हमारे पास हमारी सर्वाधिक मूल्यवान् सम्पत्ति पवित्र वेद नहीं हैं। पवित्र ज्ञानकी इस पारिवारिक निधिको प्राप्त करते समय मुझे जिस अपार हर्षकी अनुभूति होरही है, उसे मैं शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता। यहाँ मैं यह कहना आवश्यक समझता हूँ कि हम अपने सब धार्मिक कृत्य तथा कर्मकाण्ड वैदिक परम्पराओंके अनुसार ही करते हैं। पर हमारे पास केवल यजुर्वेद और सामवेदके थोड़ेसे मन्त्र हैं। इनके सहारेही हम अपनी सब धर्मविधियाँ सम्पन्न करते आ रहे हैं। अब अपनी जनश्रुति और परमविद्याकी इस अमूल्य निधिको प्राप्त करके मुझे लग रहा है, जैसे स्वयं परमात्माने अपनी दिव्य-ज्योति और अक्षय सच्चिदानन्दके साथ मेरे घरको पवित्र किया है।"

इन रोमहर्षक और भावभीने शब्दोंके साथ राजगुरुने पवित्र वेदको परम्परागत हिन्दू पूजन-विधि, शंखध्वनि, मृदंग-वादन तथा घंटियोंके गुंजायमान स्वरके साथ ब्रह्मदेवकी मूर्तिके सामने प्रतिष्ठापित किया।

प्रातःकालमें किसी बौद्ध-विद्वत्परिषदमें सम्भवतः प्रथम बार, वेदोंका प्रतिष्ठापन किया गया। इस शुभ अवसर पर पूर्वी बौद्ध विश्वके धर्माधिकार-वर्गमें द्वितीय स्थान-प्राप्त, उप-संघराजने भी, अपनी उपस्थितिसे समारोहको गरिमा प्रदानकी। उन्होंने स्वामी गंगेश्वरानन्द की ओरसे भारतीय राजदूतसे वेदोपहार ग्रहण किया। किसीभी बौद्ध-विश्वविद्यालय द्वारा हिन्दू-धर्मके, जिससे पृथक् होकर, बौद्ध-धर्मने अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व निर्मित किया था, पवित्र ग्रन्थकी आनुष्ठानिक स्वीकृतिका यह पहला अवसर था।

स्वामीजीने विश्वविद्यालयके भिक्षु-छात्रों तथा विद्वानोंके शोध-कार्य तथा गहन अध्ययन के लिए वेदोंका स्वागत करनेके उपसंघराजके सद्भावना-प्रदर्शनके लिए, उन्हें धन्यवाद दिया। अपने उद्घाटन-भाषणमें उन्होंने कहा—"भगवान् बुद्धका जन्म भारतमें हुआ था। उन्होंने जिस विचार-पद्धति तथा दर्शनका विकास किया, उसे कालान्तरमें बौद्ध-धर्मके नामसे जाना जाने लगा। दो हजार वर्षसे भी अधिक समय पूर्व, यहाँकी जनताने इसका स्वागतकर इसे अंगीकार किया। उसे अक्षुण्ण रखनेमें उन्होंने आनन्द और परमानन्द दोनोंका अनुभव

किया। मेरे मतसे, भगवान् बुद्ध वेदोंके विरोधी नहीं थे। सच तो यह है कि वेदोंने कहीं भी 'हिंसा' का समर्थन नहीं किया है। वैसे यह सच है कि भगवान् बुद्धके आगमनसे पूर्व, वेदोंके कुछ व्याख्याकारोंने अपनी विचित्र व्याख्याओंके कारण यह धर्मसंकट पैदा कर दिया था। भगवान् बुद्ध अहिंसाके अनुयायी और उपदेशक थे। अन्य मामलोंमें वेदों और भगवान् बुद्धके उपदेशों और साधनामें बहुत समानता है। सच तो यह है कि वेद वे योजनाएँ हैं, जिनके अनुसार ब्रह्मदेवने इस ब्रह्माण्डका सृजनकर, उसे आदर्श जीवन तथा विधि और नियमादि प्रदान किये।"

बौद्ध-धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले देशोंमें त्रिपिटकको वेदोंके समान पूजा जाता है। मैं कह नहीं सकता कि बौद्ध-धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले आपके देशमें भगवान् वेदका इतना शानदार स्वागत देखकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई है।

मानवताके प्राचीनतम अभिलेख

उपसंघराजने अपने सच्चे तथा आह्लादक स्वागत-भाषणमें आभार-प्रदर्शन करते हुए कहा, "अभी तक हमारी महा मुंगकुट अकादमीमें वेद, जो मानवताके असंदिग्ध प्राचीनतम अभिलेख हैं, नहीं थे। स्वामीजीने इस महान् आवश्यकता की, जिसकी कमी हमें अर्सेसे अनुभव हो रही थी, पूर्ति कर दिखायी है। अब हमारे भिक्षु छात्र और विद्वान् वेदों और त्रिपिटकका तुलनात्मक अध्ययन करके लाभान्वित हो सकेंगे।"

समारोह बौद्धोंके इस परम्परागत मांगलिक मन्त्रके सस्वर पाठके साथ समाप्त हुआ :—

"सर्वं बुद्धानुभावेन भवतु सर्वं मंगलम्
सर्वं धर्मानुभावेन भवतु सर्वं मंगलम्"
तथाः "सर्वं संघानुभावेन भवतु सर्वं मंगलम्"

अकादमीके सभी भिक्षु छात्रों और अध्यापकोंने इस समारोहमें भाग लिया था। उनके अतिरिक्त, समारोहमें बंगकोकके अनेक गण्यमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे।

२२ को स्वामीजीने हिन्दू-समाज तथा हिन्दू-धर्म-समाके दो प्रसिद्ध मन्दिरोंको वेदोपहार दिया। इन सब समारोहों तथा बंगकोकमें स्वामीजीके रहनेकी अवधिमें थाईदेश तथा भारतीयोंकी विशाल उपस्थिति स्वामीजीके कार्य-क्रमके प्रति उनके उत्साहकी द्योतक थीं। महान् महामण्डलेश्वरके दर्शन तथा आशीर्वादके लिए सैकड़ों परिवारोंके लोग प्रतिदिन प्रातः-सायं पंक्तिवद्ध उपस्थित रहते थे।

पवित्र वेदोंकी तीन प्रतियोंको पीछे छोड़कर, जो थाईदेशके महामहिम नरेश, महा चलालोंगकरण विश्वविद्यालय तथा एक अन्य महत्वपूर्ण, केन्द्रको (भारतीय राजदूत द्वारा) भेंट दी जायेगी। २३ की दोपहरको स्वामीजी हांगकांगके लिए रवाना होगये। हांगकांग उनके वेदोपहारका अगला पड़ाव था। ✯

* दो लघु-कथा

श्रीत्रिलोकीनाथ ब्रजवाल

याचक

प्रातःका समय । शीतका वातावरण । नवोदित सूर्यकी किरणें बहुत ही सुहानी एवं सुख-दायक । नदीमें स्नानकर लौटते हुए सेठने खुली धूपमें लेटे हुए व्यक्तिसे कहा—'कुछ चाहिए ?"

अस्त-व्यस्तसे व्यक्तिने सेठको उत्तर नहीं दिया । सेठने पुनः गर्वसे कहा—"अरे, भाई ! बोल तो सही, क्या चाहिए ?"

व्यक्तिने उदास-भावसे उसे देखा और पूछा—"क्या देना चाहते हो ?"

"तुम्हें क्या चाहिए ? तुम कहो ।"

"मुझे ? तुम दोगे ? जो माँगू वह दोगे ?"

"ऐसा क्या माँगते हो, बादशाहत तो दूँगा नहीं ।"

"नहीं, वह मैं माँगूंगा भी नहीं ।"

"फिर क्या चाहिए ?"

व्यक्तिने बहुत ही सहज भावसे हाथ बढ़ाकर कहा—"लाओ, जो मेरा समय आपने लिया है, वह मुझे दे दो ।"

सेठ निरुत्तर-सा रह गया । व्यक्तिने हँसकर कहा—"क्यों याचकको दोगे ?"

सेठ बिना उत्तर दिए ही वहाँसे चला गया ।

मूल्यांकन

युवकने अत्यन्त दुःखी होकर उस वृद्धसे कहा—"मुझे धन चाहिए । बिना धनके इस जीवनमें क्या है ?"

वृद्धने संयतभावसे पूछा—"कितना धन मिलनेपर तुम सुखी हो सकते हो ?"

"कम-से-कम पाँच लाख रुपये हों ।"

"इसके बदलेमें तुम्हें भी कुछ देना होगा ।"

"मेरे पास क्या है ? शरीर है । इसको कहें तो सेवामें लगा सकता हूँ ।"

"सोच लो ।"

"सोच लिया ।"

"अच्छा तो अपने शरीरमेंसे आँख, मुख, हाथ—इनमेंसे एक अंग देना होगा । विचार कर लो ।"

युवक झिझका । शरीरके सभी अंग तो महत्वपूर्ण हैं, वह किसे दे । वह स्वीकृतिमें सिर न हिला सका ।

वृद्धने युवकका संकोच देखकर समझाते हुए पूछा—"तुम ही विचार करो । ईश्वरकी दी हुई निरोग काया महत्वपूर्ण है अथवा संसारका धन ?"

युवकने अपना सिर झुका लिया ।

नाग-यज्ञ की पुनरावृति

डॉ० भगवानसहाय पचौरी

रचनाकार महाभारतके, कितना और भरोगे,
ओ ऋषिकल्पी ! शान्ति-पाठ, अब कब तक और करोगे ?
साधु-त्राणकी शपथ, न जाने कहाँ पड़ी सोती है,
आखिर सहनशक्तिकी भी, कोई सीमा होती है।
बाहरके अजदहे उधर, अपने फन खोल रहे हैं,
अपने घरके भी, बाँबीके भीतर डोल रहे हैं !
इनकी अँगड़ाईसे, भूकी खाल खिंची जाती है,
दर्द देख तपकी संयमकी, आँख मिची जाती है।
कील-कीलकर कई बार, इनको तुम छोड़ चुके हो,
कई बार इनकी जहरीली दाढ़ें तोड़ चुके हो।
पर विषधर तो विषधर है, ये सीधे कहाँ चलेंगे,
जितना दूध पिलाओगे, उतना ही विष उगलेंगे।
मार गुंजलकें, फन काढ़े, फुंकारें छोड़ रहे हैं,
रक्त परीक्षितका पी, जनमेजय पर दौड़ रहे हैं।
हाहाकारोंमें कब तक, तुम जय-जयकार भरोगे ?
ओ तपकल्पी ! कालकूट यों, कब तक पान करोगे ?
क्या तक्षक-ही-तक्षक, अब धरती पर राज करेंगे ?
कितने धन्वन्तरि ऐसे ही, असमय मौत मरेंगे ?
मंत्रोंमें बल फूंक अरे, पापोंका तर्पण होगा,
मघवा सहित आज हर तक्षक अग्नि समर्पण होगा।
कह दो शृंगी शाप आज, अक्षर भी व्यर्थ न होगा,
जनमेजयके नाग-यज्ञ का पुनः प्रवर्तन होगा।
अपने दायित्वोंको अब औरोंपर मत थोपो रे,
जितना मूल्य चुके चुक जाये, नाग यज्ञ रोपो रे।
जो कि हमारा प्राप्य, गुंजलकोंमें दाबे बैठे हैं,
सोनेपर, चाँदीपर, ये कुंडली मार बैठे हैं।
ये तिजोरियों, तहखानोंसे, कहाँ निकलने वाले ?
इनके दुर्गम दुर्ग अन्यथा नहीं टूटने वाले।
तोड़ रहे तुम ऊसरको, मरुथल बंजर-परतीको,
ये पोली करते जाते हैं, शस्य श्याम धरतीको।

भीख माँगनेसे कब हमको, सोना रंचक देंगे,
हमपर जो वर्चस्व बचा है उसे और ले लेंगे।
ये अमृतधर नहीं कि ये काले-काले विषधर हैं,
श्वास-श्वासमें इनके सौ-सौ वासुकियोंके घर हैं।
इन्द्रासन तकको ये निज बाँहोंमें जकड़ चुके हैं,
कई बार ये महाकाल तक से भी अकड़ चुके हैं।
'रिपु सन विनय कुटिल सन प्रीती' आप्त वाक्य बाँचो रे,
रे जनमेजय एक बार फिर ऋषियोंको जाँचो रे।
नये यज्ञमें इन्द्रोंको भी नहीं छोड़ना होगा,
नाग-रक्षकोंका भी दम्भी किला तोड़ना होगा।
आस्तीनकी दुरभि-सन्धिका कोई अर्थ न होगा,
जनमेजयके नाग-यज्ञका पुनरावर्तन होगा।
श्वास-श्वासपर क्रूर कालके, पहरे लगे हुए हैं,
पग-पगपर क्या, इंच-इंच विस्फोटक दगे हुए हैं।
धरतीसे अम्बरतक, गाढ़ा जहर घोल डाला है।
प्राण-प्राणको सहज मौतका, द्वार खोल डाला है।
यमुना-कूले हरित दुकूले, बज न पा रही वंशी,
कालीदहमें फन फैलाये, फुंकारें विषदंशी।
राधा-गोपी-ग्वाल, रास-रचना सब भूल चुके हैं,
रोम-रोममें पोर-पोरमें, शूलक हूल चुके हैं।
कब तक वे कंसों, चांडूरोंपर टूटते रहेंगे,
शीश कुवलियापीड़ोंके, कब तक कूटते रहेंगे।
मरे देवकी, खपे यशोदा, राधा कुछ भी हो ले,
जूँ रेंगे न कानपर उनके कितना कोई रोले।
माना युग-कालिया ठान मनमें संग्राम खड़े हैं,
नाग-नथैया से भी पर क्या काली नाग बड़े हैं?
कह दो नटवर-नागरसे अब कोई रास न होगा,
क्या अब भी उनको जन-पीड़ाका आभास न होगा।
अब न मिलेगी वंशी उनको, पट-रिवर्तन होगा,
कह दो क्रूर कालियाके, फन-फनपर नर्तन होगा।
झूठ भागवतगीताका अब कोई कथन न होगा,
महानाग-लीलाका फिरसे, पुनरावर्तन होगा।
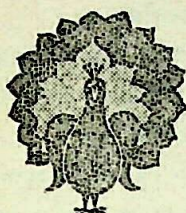
कृष्णोपासक मुसलमान

कृष्णकी दीवानी : कवयित्री ताज

श्री शरणबिहारी दुबे

व्रज-भूमिके प्रमुख केन्द्र स्थान मथुरासे निःसृत व्रज-भाषाकी काव्य-धारा, कृष्ण-भक्तिका सन्देश लेकर पंजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र तथा बंगाल तक प्रवाहित होती थी। १५वीं शताब्दीसे १६वीं शताब्दीके मध्य तो इसका अखण्ड आधिपत्य केरल और बीजापुर तक स्थापित हो चुका था। व्रज-भाषाके इस व्यापक प्रचार, प्रसार और प्रचलन से भारतीय-संस्कृतिमें पले हुए केवल आर्य मतावलम्वी ही प्रभावित हुए हों, सो बात नहीं, इसके मुग्ध-माधुर्यने तत्कालीन विदेशी, विधर्मी और विभाषी सहृदय मुस्लिम मतावलम्बियोंके ऊपर भी ऐसा चमत्कार करके दिखाया कि सैकड़ों ही मुसलमान कविकोविदोंने व्रज-भाषामें रचना करके अपनेको गौरवान्वित किया।

व्रजभूमि, व्रजभाषा और श्रीकृष्णके प्रति अनुराग केवल पुरुष-कवियोंका ही नहीं, अनेक मुसलिम महिलाओंका भी रहा है, जिनकी सरताज कवयित्री 'ताज'को कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। प्रेम-दीवानी ताज अपने इष्ट भगवान् कृष्णकी भक्तिमें मीराकी भाँति ही गाती हुई कहती है :

"सुनो दिल जानी, मेरे दिलकी कहानी,
तुम दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव-पूजा ठानी मैं नवाज हू भुलानी,
तजे कलमा, कुरान, सारे गुनन गहूँगी मैं।
नन्दके कुमार कुरवान तेरी सूरत पै,
हों तो मुगलानी पै हिन्दुआनी ह्वै रहूँगी मैं।

मीराकी भाँतिही कृष्णके चरणोंपर अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेवाली, धर्म तथा जातिके कृत्रिम बन्धनोंको तोड़कर, स्वच्छन्दरूपसे अपनी भावनाओंको कृष्ण-भक्तिके रंगमें रंगकर, ताज गुनगुनाने लगती हैं :

"छैल जो छबीला सब रङ्गमें रङ्गीला,
बड़ा चितका अड़ीला कहूँ देवतोंसे न्यारा है।
माला गले सोहे नाक मोती सेत सोहे कान
कुण्डल मन मोहे लाल, मुकट सिर धारा है।
दुष्ट जन मारे सब, सन्त जो उबारे 'ताज'
चित्तमें निहारा प्रन प्रीति करनवारा है।

ताज कृष्ण-काव्यकी कवयित्री है। उसके काव्यमें मीराहीके सदृश्य प्रेम है, समर्पण है, अगाघ भक्ति है, माधुर्य है, श्रद्धा है, शृङ्गार है, किन्तु दैहिक न होकर अपार्थिव है। कृष्णकी महिमासे वह पूर्णतया परिचित है। उनके पराक्रमको देख वह आश्वस्त है, किन्तु अन्धविश्वासिनी कदापि नहीं। धर्मके अनेक मिथ्या आडम्बरोंके प्रतिभी वह सजग है। वेद, पुराण तथा गंगास्नानसे अधिक नन्दके कुमारपर अडिग आस्था रखती है। इस सबको सुनिये उसीके शब्दोंमें :

"काहूकौ भरोसौ वेद चारहू जो पढ़ होत,
काहूकौ भरोसो गङ्गा न्हाए सहस्रधारको।
काहूकौ भरोसौ सब देवनकौ पूजे ताज,
काहूको भरोसौ विधि शङ्कर उदारको।
तारन तरन कृष्ण सुने जो जहान बीच,
मोकौ तो भरोसौ एक नन्दके कुमारको।"

ताजके काव्यमें जहाँ कृष्ण-प्रेमके साक्षात् दर्शन होते हैं वही उसमें लौकिकताके भी दर्शन होते हैं। ताज अपनी भक्ति-भावनाका परिचय एक स्थानपर गणेश-वन्दनाके रूपमें भी देती हुई कहती है :

"गण-पति गण सिर ताज है, तुम्हें नमाऊं शीश।
ज्ञान देव पूरण हमें, जानेंगे सुत ईश॥"

ताज प्रेम, भक्तिके साथ-ही-साथ भारतीय-दर्शन, इतिहास तथा संस्कृतिसे भी पूर्ण परिचित थीं। गीताके कर्मवादमें उनकी अडिग आस्था थी। तभी तो अपने एक सवैयामें उन्होंने कर्मकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है :

"कर्मसों बुद्धि हूँ ज्ञान गुनै अरु,
कर्मसों चातक स्वाँति जो पीवे।
कर्मसों जोग अरु भोग मिले,
अरु कर्मसों पंकज नीर न छीवे॥
कर्मसों 'ताज' मिले सुख देहकी,
कर्मसों प्रीति पतंग ज्यु देवे।
कर्मके यों ही अधीन सबै,
पर कर्म कहूके अधीन न होवे॥"

कृष्ण-भक्ति-काव्यके अधिकांश लेखकोंने पद-शैलीका ही अनुकरण किया है। किन्तु ताजने कवित्त, सवैया आदिको अपने काव्यका माध्यम बनाया है। इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। साधारण मुस्लिम महिलाके लिए यह एक गौरवकी बात है।

डॉ० सावित्री सिन्हाने श्री गोविन्द गिल्लाभाईके एक पत्रके आधारपर उन्हें करौली ग्रामका माना है। उनका जन्म एक मुस्लिम परिवारमें हुआ था। बड़े होनेपर वे नित्य स्नान करके भगवान्‌के दर्शनके लिए जाने लगीं। दर्शनके बाद ही वे भोजन करती थीं। उनके बारेमें कथा प्रसिद्ध है कि एकबार जब वे मन्दिरमें दर्शनोंके लिए गयीं और वैष्णवोंने उन्हें विधर्मिणी समझकर मन्दिरमें नहीं घुसने दिया तो वे वहीं आँगनमें बैठ गयीं। कहा जाता है कि रात्रिको उन्हें ठाकुरजी ने स्वयं आकर भोजन कराया। प्रातः मन्दिरके थाल आदिको ताजके सामने रखा देखकर भक्तोंको पूरा विश्वास हुआ। वे उनके चरणोंमें गिर गये और उस दिनके बाद उन्हें किसीने भी मन्दिरमें जानेसे नहीं रोका।

माया

हमको इस मायाके प्रवाहमें होकर जाना क्यों पड़ रहा है? इसलिए कि हमें मायाका भ्रम है, हम मायाके पाशमें बँधे हुए हैं।

मायाके पाशसे छुटकारा भक्तभी पा सकता है और ज्ञान-योगीभी। ज्ञानकी अवस्थामें ज्ञानी कहता है—"महान् अहम्"—मैं ब्रह्म हूँ तथा भक्तकी मायामें भक्त कहता है—"महान् त्वम्"—तू ब्रह्म है।

जब माया ज्ञानीको बाँधने आती है तो ज्ञानी कहता है कि—"मैं ही सब कुछ हूँ, सबमें मैं ही हूँ।" इसी कारण मायाकी डोर छोटी पड़ जाती है। जब माया भक्तको बाँधने आती है तो वह कहता है—"मैं तो हूँ ही नहीं, जो कुछ है सो तू ही है।" इस प्रकार भक्त इतना छोटा हो जाता है कि उसपर मायाका वश ही नहीं चलता। इस तरह ज्ञान और भक्ति दोनोंको ही माया नहीं बाँध सकती। दोनोंही मायासे स्वतन्त्र रहते हैं।

—स्वामी आत्मानन्दजी

गीता-पारायण

महात्मा गांधी

गीता महाभारतका एक नन्हा-सा विभाग है। महाभारत ऐतिहासिक-ग्रन्थ माना जाता है, पर हमारे मतसे महाभारत और रामायण ऐतिहासिक-ग्रन्थ नहीं हैं, वल्कि धर्म-ग्रन्थ हैं। या उसे ऐतिहासिक कहना चाहें तो वह आत्माका इतिहास है और हजारों वर्ष पहले क्या हुआ; यह नहीं वताता, वल्कि प्रत्येक मनुष्य-देहमें क्या जारी है, इसकी वह एक तस्वीर है। महाभारत और रामायण दोनोंमें देव और असुरके राम और रावणके वीच नित्य चलनेवाली लड़ाईका वर्णन है। ऐसे वर्णनमें गीता कृष्ण-अर्जुनके वीचका संवाद है। उस संवादका वर्णन अन्ध धृतराष्ट्रसे संजय करता है।

गीताके मानी हैं गायी गयी। इसमें उपनिषद् अध्याहार है। अतः पूरा अर्थ हुआ—गाया हुआ उपनिषद्। उपनिषद् अर्थात् ज्ञान-वोध। यानी गीताका अर्थ हुआ—श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनको दिया हुआ वोध। हमें यह समझकर गीता पढ़नी चाहिए कि हमारी देहमें अन्तर्यामी-श्रीकृष्ण भगवान् आज विराजमान हैं और जव जिज्ञासु अर्जुनरूप होकर धर्म-संकटमें अन्तर्यामी भगवान्से पूछेगा, उसकी शरण लेगा तो उस समय वह हमें शरण देनेको तैयार मिलेंगे। हम ही सोये हैं, अन्तर्यामी तो सदा जाग्रत है। वह वैठा राह देखता है कि हममें कव जिज्ञासा उत्पन्न हो। पर हमें सवाल भी पूछना नहीं आता, सवाल पूछनेकी मनमें भी नहीं उठती। इस कारण गीता-सरीखी पुस्तकका नित्य ध्यान धरते हैं,उसका भजन करते-करते अपनेमें धर्म-जिज्ञासा उत्पन्न करनेकी इच्छा करते हैं, सवाल पूछना सीखना चाहते हैं और जव-जव मुसीवतमें पड़ते हैं, तव-तव अपनी मुसीवत दूर करनेके लिए हम गीताकी शरणमें जाते हैं और उससे आश्वासन लेते हैं। इसी दृष्टिसे गीता पढ़नी है। वह हमारी सद्गुरुरूप है, माता-रूप है और हमें विश्वास रखना चाहिए कि उसकी गोदमें सिर रखकर हम सही-सलामत पार हो जायेंगे। गीताके द्वारा हम अपनी सारी धार्मिक-गुत्थियां सुलझा लेंगे।

इस भांति नित्य गीताका मनन करनेवालोंको उनमेंसे नित्य नये अर्थ मिलेंगे। ऐसी एक भी उलझन नहीं है कि जिसे गीता न सुलझा सकती हो। हमारी अल्प श्रद्धाके कारण हमें उसका पढ़ना-समझना न आये तो वह दूसरी वात है। पर हम अपनी श्रद्धा नित्य वढ़ाते जाने और अपनेको सावधान रखनेके लिए गीताका पारायण करते हैं।

योग-क्षेमका प्रमुख साधन

—स्वामी करपात्रीजी महाराज

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

भगवान् कहते हैं कि 'जो लोग अनन्य होकर मेरी उपासना करते हैं, उनके योग-क्षेम को मैं प्राप्त कराता हूँ। भगवान्‌से पृथक्‌ अपना अस्तित्व न माननेवाले किंवा 'भगवान्‌से अन्य कुछभी नहीं है' ऐसा समझकर भगवान्‌को ही ध्येय, ज्ञेय, परमाराध्य या सर्वस्व माननेवाले महानुभावोंको योग और क्षेम भगवान् प्राप्त कराते हैं। यहाँ अप्राप्त ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, विवेककी प्राप्ति 'योग' है तो प्राप्तिका रक्षण है 'क्षेम'। भगवान्‌की उपासनासे ही ज्ञान, वैराग्य आदि प्राप्त होते हैं। भगवान्‌को जो भजता है उसे भक्ति, विरक्ति, भगवत्प्रबोध वैसे ही प्राप्त होते हैं, जैसे भोजनसे प्रतिग्रास तुष्टि, पुष्टि एवं क्षुधाकी निवृत्ति होती है। भगवत्परायण होकर निरन्तर श्रवण, मनन, अन्योन्य-प्रबोधन, निदिध्यासनसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ही अधिकारीको ज्ञान प्रदान करते हैं, जिससे हृदयका अज्ञान दूर हो जाता है :

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।

वस्तुतः ज्ञान, वैराग्यही नहीं, जिस किसीभी अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिको 'योग' कहा जा सकता है। लौकिक अभ्युदयोंमें साम्राज्य, स्वाराज्य, वैराज्य एवं अन्यान्य नैतिक, आर्थिक, सामाजिक सुविधाओंकी प्राप्ति एवं पारलौकिक ऐन्द्रपद, प्राजापत्यपद, ब्राह्मपद तथा निःश्रेयस् परमात्मपदकी प्राप्तिको 'योग' कहा जा सकता है। सभी अप्राप्तकी प्राप्तियोंमें निश्चयही परमेश्वरका हाथ रहता है, इसलिए परमेश्वरकी आराधनासे सभी अप्राप्त अभीष्टकी प्राप्ति हो जाती है।

संसारमें इष्ट-प्राप्ति सर्वत्र ही दुर्लभ हैं। दीनता, परतन्त्रता, आधि, व्याधि, शोक, मोह आदि अनिष्ट अनर्थोंकी प्राप्ति तो विना प्रयासके हो जाती है। विपत्तियोंको कोईभी निमन्त्रण नहीं देता, प्रत्युत उनके निवारणके लिएही विविध प्रयत्नोंका अनुष्ठान होता है। विपत्तियोंका सामना करनेके लिए प्राणी अनेकानेक सामग्रियोंका सञ्चय करता है। सैनिक-संगठन, अस्त्र-शस्त्र संग्रह, सन्धि, विग्रह आदि सभी कार्य तदर्थ ही कहे जा सकते हैं। फिरभी विपत्तियोंका वाहुल्य प्रत्यक्ष है। सम्पत्तियोंके लिए लाख प्रयत्न करने, वारम्वार उनका आवाहन करनेपर भी उनका दर्शन दुर्लभ होता है।

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति ।
संशयं तु समारुह्य यदि जीवति पश्यति ।।

अर्थात् संशयापन्न हुए विना प्राणियोंको कल्याणका दर्शन नहीं हो सकता। संशयापन्न होनेपर यदि जीवन रहा, तो फिर भद्र दर्शन होता है ।

कहा जाता है कि 'प्राणियोंके निजी पुरुषार्थसे ही समस्त अभीष्टोंकी प्राप्ति होती है, इसमें ईश्वरके अनुग्रहकी प्रतीक्षा व्यर्थ है।' किन्तु तनिक विचार करनेपर स्पष्ट हो जायगा कि पुरुषार्थकी सफलतामें भी ईश्वरके अनुग्रहकी आवश्यकता है। यह व्यापक सिद्धान्त है कि कार्य करनेकी योग्यतावाले व्यक्तिको भी कार्य लेने और योग्यतानुसार फल देनेवालेकी अपेक्षा होती है। अनेक विषयोंके आचार्यको भी वेकारीसे परेशान होना पड़ता है। जब कोई काम लेना हो तभी कार्य-करण क्षमताकी सार्थकता होती है। काष्ठ, पाषाणादिकी सेवा करनेपरभी भृत्यको क्या मिलेगा? इसीलिए कर्मोंका फल देनेकी सामर्थ्य जिसमें हो, ऐसे व्यक्तिकी अपेक्षा होती है। अल्पज्ञ जीवोंको अपनेही सभी कर्मोंका ज्ञान नहीं होता, फिर अनन्त ब्रह्माण्डके अनन्त प्राणियोंके सभी जन्मोंके कर्मों और फलोंका जानना उसके लिए सम्भव कहाँ? कथंचित् ज्ञान होने पर भी फल-सम्पादनकी शक्ति नहीं होती। अतएव सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान्की अपेक्षा सुनिश्चित है ।

इस दृष्टिसे हर-एक कर्म-फलमें परमेश्वरका हाथ अवश्य है। महाभारत रामायण आदि सद्ग्रन्थोंमें जितने शूरवीरों एवं महापुरुषोंकी चर्चा आती है, उनके पूर्व-इतिहासोंपर दृष्टि डालनेपर विदित होगा कि उन्होंने विशिष्टरूपसे देवाराधन या तपस्या आदि दैवी-साधनोंका अनुष्ठान किया। आज भी यही वात है। अधिक त्याग, तपस्यावाले व्यक्ति ही उन्नतिके भाजन होते देखे जाते हैं। जैसे एक चक्रसे रथ नहीं चल सकता, एक पंखसे पक्षी नहीं उड़ सकता, किन्तु दो चक्र, दो पंख आवश्यक होते हैं। वैसे ही केवल दैव या केवल पुरुषार्थसे काम नहीं चल सकता, दोनोंकी अपेक्षा रहती है। विशेष रूपसे दैव-वल या ईश्वरके विना देह, इन्द्रिय, मन, वुद्धि आदिमें कार्य-सम्पादन करनेकी शक्ति भी नहीं रहती। देवानुग्रहसे योग्य शरीर, इन्द्रिय, वुद्धि और योग्य सामग्री मिलनेपर ही पुरुषार्थ वन पड़ते हैं। इस दृष्टिसे लौकिक या पारलौकिक किसी भी फलको प्राप्त करनेके लिए ईश्वरका समाश्रयण परमावश्यक है ।

अभीष्ट-प्राप्तिके पश्चात् उसके संरक्षणका प्रश्न रहता है। ज्ञान, वैराग्य, योग आदि मिल जानेपर नष्ट हो जाते हैं। जैसे कच्चे घड़ेसे जल निकल जाता है, वैसे ही प्रमादी एवं अजितेन्द्रिय पुरुषके ज्ञान आदि नष्ट हो जाते हैं। साम्राज्य, स्वाराज्य, वैराज्य आदिके मिलने पर भी उनके रक्षणका प्रश्न रह जाता है। आज वड़े-वड़े स्वतन्त्र राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रता छिनी जा रही है। यदि किसी दुर्वल एवं परतन्त्र राष्ट्रको पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त भी हो जाय तो भी उसकी रक्षा करनी कठिन होगी। अतः प्राप्तिके रक्षणरूप क्षेमकी प्राप्तिके लिए भी परमेश्वरका आश्रयण आवश्यक है ।

वैसे तो सभीका योग-क्षेम यद्यपि परमेश्वर ही चलाते हैं, तथापि अन्यत्र वह कार्य परम्परासे अन्यान्य प्रयत्नों द्वारा होता है। किन्तु जो अनन्य भावसे परमेश्वरकी आराधना करते हैं, उनका तो योग-क्षेम सर्वथा परमेश्वरसे ही चलता है।

आज भारतकी ही नहीं, किन्तु समस्त विश्वकी आध्यात्मिकी, आधिभौतिकी उन्नतियाँ विरुद्ध हो चुकी हैं, सब प्रकारका पतन-ही-पतन सामने है। अतः उन पतनोंसे मुक्त होकर अभीष्ट उन्नतियोंको प्राप्त करने तथा उनकी रक्षाके लिए भगवान्‌की आराधना करनी चाहिए। अनन्य भावनासे भगवान्‌को भजनेपर समस्त अप्राप्त अभीष्टोंके प्राप्तिरूप 'योग' और उनके रक्षारूप 'क्षेम' भगवान्‌के द्वारा सुलभ हो जाते हैं।

शोर और शान्ति

आप रेडियो बजा रहे हों या रिकर्डप्लेयर; सवाल इस बातका है कि आप उसकी आवाज बहुत तेज सुनना पसन्द करते हैं अथवा बहुत धीमी? आप एक काम कीजिए—एक छोटा-सा प्याला लेकर उसे नलके नीचे लगा दीजिए और नल पूरा खोल दीजिए। आप देखेंगे कि आप प्याला भर पानेमें पूर्ण असमर्थ हैं,सारा पानी उसकी तलीसे टकराकर वापस लौट जाता है। किन्तु जब आप नलको कम खोलते हैं, उसकी धार धीमी होती है तो प्याला आरामसे भर जाता है। ठीक यही स्थिति आवाज की है—जब आप तेज आवाज सुनते हैं तो वह महज एक शोर होती है और कानोंकी तलीसे टकराकर वापस लौट जाती है; किन्तु वही आवाज जब धीमी होती है तो बड़ी प्रिय होती है और हृदय तक पहुँचकर आपको आनन्द प्रदान करती है।

अब जरा इसी दृष्टिसे आजकी सामाजिक-स्थितिको भी देखिए। किसी भी समस्याके समाधानके लिए आजके अधिकांश व्यक्ति शोरका आश्रय ग्रहण करते हैं—नारेबाजी, झगड़ा-झंझट, गाली-गलौजको ही सर्वश्रेष्ठ तरीका मानते हैं, जिससे वातावरण दूषित और अशान्त होकर नर्क बनजाता है। यदि यही प्रयास शोरपर से अपनी आस्थाएँ हटाकर शान्तिपूर्ण ढंगसे किये जायें तो सही दिशा प्राप्त की जा सकती है, सही निर्णय लिये जा सकते हैं और समस्याओंके सही समाधान ढूंढे जा सकते हैं।

—'सत्य'

व्रज-गीत

डॉ० राजेन्द्र रंजन

मत छलै भोगकी ओ निंदिया उनमाँदी,
हम तपी हमारें तप ही की महिमा रे।

स्रममें ही धन स्रममें ही जीवन जानें
अविरत गतिमें रति सुन्दर मनमें मानें
ओ फल ! दामिनिसौ रूप कहा दमकावै
हम परम जोतके दियरा हैं उजियारे।
हम तपी हमारें तप ही की महिमा रे।

वैभव-विलासकौ सौंप दियौ अलकाकौं
राजा विदेहकौ रूप रुच्यौ हियराकौं
मन लागौ यार फकीरीमें सुन गावै
चारों दिसकौ जागीरदार कविरा रे।
हम तपी हमारें तप ही की महिमा रे।

जड़ताकौ जगमग रूप न हमकों भायौ
सुखके नस्वर साधनसों कब ललचायौ,
भारतकी धरतीके कन-कनमें गूंजे
साँचौ है चेतन एक सवै मिथ्या रे।
हम तपी हमारें तव ही की महिमा रे।

सुचि तरल नीर ते हिमगिरि ते अभिमानी
हम कर्मव्रती अमृत-रहस्यके ज्ञानी
तन-मन-धनकी कछु ममता नाँहि विचारें
हम हैं दधीचकी कीरतके रखवारे।
हम तपी हमारें तप ही की महिमा रे।

वंदे ब्रजावसुंधराम्

श्री वृन्दावन-धाम

डॉ० प्रेमलता पालीवाल

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात् परम् किमपि तत्त्वमहम् न जाने ।।

नित्य तत्त्व श्रीकृष्ण, नित्य श्रीराधा, नित्य गोपीगण और नित्यही है श्रीवृन्दावन धाम। इन चारोंके समवेत रूपको ही नित्य-विहारकी संज्ञा दी गयी है। आनन्दकन्द अखिल रसामृत मूर्त्ति राधा-जीवनधन श्रीवृन्दाविपिन विहारीलाल और प्रेम वैचित्र्योन्मादिनी, प्रवल विरह-संतप्ता सहचरीयुक्ता श्रीवृन्दावन रासरासेश्वरी श्रीराधाकी विहार-भूमि है। श्रीवृन्दावन-धाम, जिसे 'मधुर-रस केलि-स्थली' की संज्ञा दी गई है; जहाँ ऐश्वर्य-सम्पदा, यश-भोग, जागतिक सुखादिको तिलांजलि दे साधक रज-पान हेतु, अपना सर्वस्व न्योछावरकर जयजयकार करते हैं—

"वृन्दावन सौ वन नहीं, नंदगाँम सौ गाँम।
बंसीवट सौ वट नहीं, कृष्ण नाम सौ नाम ।।"

पर इस वृन्दावनधाममें ऐसा चमत्कार क्यों? जो 'तीन लोकसे न्यारी मथुरा' में भी नहीं। यद्यपि अन्तर केवल ६ मीलका ही है—ऐसा वैचित्र्य क्यों?

सैद्धान्तिक रूपसे मथुरा कंसकी नगरी है। श्रीवृन्दावन उस हरिका धाम है, जिसने मचल-मचलकर माँ यशोदाकी गोदमें माखन-रोटी खाई है, जिसने गोपियोंसे माँग-माँगकर, चुरा-चुराकर माखनको ग्वालोंके बीच लुटाया है। बस, सिद्धान्त प्रतिपादित होतेही मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि बदल जाती है। तत्त्व बदल जाते हैं, मूल्य बदल जाते हैं, विचार बदल जाते हैं। फलतः भक्तोंकी भावांजलि और ज्ञानियोंकी विचारसरणि भी बदल जाती है।

इसी परिप्रेक्ष्यमें वृन्दावनका अर्थ, माहात्म्य-सर्वेक्षण अभीप्सित है। श्रीजीव गोस्वामी द्वारा विरचित 'उत्तर गोपालचम्पू'में वृन्दावनके विषयमें वर्णित है—

"अस्ति किल कलित निखिल वृन्दावनं वृन्दावनं नाम वनम् । यत्र ज्योतिश्चक्रमिव व्योम्नि, धर्म इव धर्मणि, तत्व निर्णय इव वेदे, सुखमिवाभीप्सित लाभे, रस इव विभावादि-वर्गे, षाड्गुण्यमिवात्मनि, स्वयमिव स्वप्रेमणि, नारायण इव परम व्योम्नि, सर्वेषामाश्रयः स च कृष्णः सतृष्णज्जनानुभवनीयतया निजां निजाश्रयणीयतामुरी करोति ।"

अर्थात् मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी प्रकारके वृन्दोंकी रक्षा करनेवाला श्रीवृन्दावन नामक वन है। दूसरे शब्दोंमें मानव व मानवेतर सभी प्रकारके वृन्दोंको आश्रय देनेके कारण इस धामका नाम वृन्दावन है। इस धाममें श्रीकृष्ण उसी प्रकार नित्य विराजमान हैं, जैसे आकाशमें नक्षत्र-मण्डल, धार्मिक व्यक्तिमें धर्म, वेदमें तत्त्व-निर्णय, अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिमें सुख, विभाव-अनुभाव-संचारी भावादिमें रस, श्रीकृष्णमें षडैश्वर्य और वैकुण्ठमें नारायण।

शब्दकोषानुसार 'वृन्दा' नाम तुलसी-पादपका है। श्रीराधाके नामोंमें एक नाम वृन्दा भी है। अतः वृन्दाका वन अर्थात् श्रीराधाका वन। इस भावको प्रकारान्तरसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि वन, उपवन या विपिनकी अधिष्ठात्री श्रीराधा ही हैं, वही साक्षात् वृन्दावन हैं। इस राधा-तत्वको जाननेके लिए राधा-भावका ज्ञान, राधा-भाव की स्थिति, राधा-भावकी मति, रति, गति और राधा-भावकी प्रतीति विशेषरूपसे वांछित है।

साधनाकी भूमिकापर भगवान्‌के स्वरूपका एक भाव है 'आनन्द'। यह आनन्द सर्वानन्द है, नैरन्तर्य निगूढ़ है, विशुद्ध है। अंश नहीं, परिच्छिन्न नहीं, अपितु सत्, चित्, आनन्द सभी भगवान्‌के स्वरूप हैं।

भगवान्‌का जो स्वरूपानन्द है, उस स्वरूपानन्दका वैष्णव शास्त्रानुसार एक नाम है—आह्लादिनीका जो सर्वस्व है, जो सर्वभाव है, सर्वाधार है, उसे ही 'प्रेम'की संज्ञा दी गई है। उस प्रेमका परम फल है 'भाव'। साधककी यह भाव-भूमिका ही श्रीराधा-रूप है। यदि हम कुछ कालके लिए श्रीराधाके पांचभौतिक शरीरादि सहित अवतार लेनेकी घटनाको न भी मानें तो भी इस आध्यात्मिक स्थिति, इस रससिक्त दशा, इस भाव-परिणतिको हम कभी नकार नहीं सकेंगे। इसी स्थितिका आधिभौतिक प्राकृत स्वरूप श्रीवृन्दावन धाम है। जो कुछ रस-सिद्धिकी अभिव्यक्ति चेतनाके सर्वोच्च स्तरपर सम्भव है। वह समग्ररूपेण लता-पत्ता, करील-कुंज, यमुना-पुलिन, रेणु-वेणुके माध्यमसे वृन्दावनमें मुखरित हो उठा है।

इस सन्दर्भमें एक तथ्य यह भी विचारणीय है कि राधा-रूप है क्या? क्या मात्र वृन्दावन धाम ही श्रीराधा हैं? इसका उत्तर है; राधा विराट् रूपमें विश्व हैं, विशिष्ट रूप में वृन्दावन और सूक्ष्म रूपमें श्रीकृष्णकी आह्लादिनी चिन्मय शक्ति। भक्तप्रवर ब्रह्मलीन श्रीहनुमानप्रसादजीके शब्दोंमें "राधा है श्रीकृष्णका आनन्द, श्रीकृष्णका महाभाव।" इस महाभावके अर्थात् श्रीकृष्णके अर्थात् श्रीराधाके अनेक स्तर हैं, अनेक स्वरूप हैं।

इसी अनेक स्तर विकास-परम्परामें श्रीवृन्दावन धाम श्रीराधाका ही रूप है। यह श्रम श्रियाजूके कोमल करोंसे स्पृष्ट, पल्लव वल्लरीसे मंडित और राधा-पदचिह्नोंसे सर्वतोमुखी विभूषित है—तभी तो 'राधे-राधे' के रवसे क्वणित वृन्दावन भक्तकी चेतनाको दिव्याराध्य

राधामय बना देता है। वस्तुतः राधामाधवको कुंजकेलिका नित्य कानन यह श्रीवन 'वृन्दावन' तीव्र प्रेमके प्रेमसे उन्मादित, रति-केलि-कलाओंके कौतुकपूर्ण क्रिया-कलापोंसे कल्लोलित, रसनागर-नागरी, प्रिया-प्रियतम नित्यकेलि रससे प्रफुल्लित, नित्य क्रीड़ा मन्दिर है। वृन्दावन प्रणय-प्रेरक है, केलिरस प्रधान है, रास-रसराज है। अतः राधा-माधव वृन्दावनके अधीन हैं, किन्तु वृन्दावन सर्वथा सर्वतंत्र-स्वतंत्र है।

इस वृन्दावनके आकर्षण-बिन्दु सनोरख, कालीदह, द्वादश आदित्य टीला, अद्वैतवट, शृंगारवट, सेवाकुंज, चीरघाट, रास-मण्डल, निधिवन, धीरसमीर, वंशीवट, ब्रह्मकुण्ड, वेणुकूप, दावानल कुंड, ज्ञानगुदड़ी जैसे दर्शनीय स्थल हैं।

सनोरख—तपःस्वाध्यायनिरत मुनिश्रेष्ठ सौरभकी तपस्या-स्थली है।

कालीदह—यमुनातटका वह पुलिन है, जहाँ श्रीकृष्णने कालियनागका मान मर्दनकर दिव्य लीलाका संवर्धन किया था।

द्वादश आदित्य टीला—यह वह पुनीत स्थल है जहाँ सूर्यने द्वादश कलायुक्त हो कालीनाग संहारोपरान्त भीगे हुए भगवान् कृष्णके शैत्यका निवारण किया था। कहा जाता है कि चैतन्य-सम्प्रदायके सनातन गोस्वामी व्रज-परिक्रमाके अवसर पर यहाँ ठहरे थे।

अद्वैतवट—अद्वैत स्वामीकी तपस्यासे भास्वर इस स्थलको महाप्रभु चैतन्यने अपने वाससे धन्य किया था।

शृंगारवट—रास-शिरोमणि नन्दनन्दनको सखाओंने यहाँ विशेष प्रकारसे सजाया था। अतः स्थानका यह नामकरण हुआ। चैतन्यवंशीय नित्यानन्द स्वामीके परिकरका इस स्थल पर विशेष अधिकार है।

सेवाकुंज—श्यामाश्यामकी प्रणय-क्रीड़ाओंसे मुखरित करील कुंजों, लता-पल्लवोंसे अवगुंठित, सेवाकुंजको निकुंजवनकी संज्ञा दी गई है। इस परिप्रेक्ष्यमें हित चौरासीमें वर्णित श्रीहितहरिवंशजी महाराजकी यह सुरम्य वाणी द्रष्टव्य है—

आज निकुंज मंजुमें खेलत नवल किशोर नवीन किशोरी।
अति अनुपम अनुराग परस्पर सुनि अभूत भूतलपर जोरी॥
विद्रुम फटिक विविध निर्मित घर नव कर्पूर पराग न थोरी।
कोमल किसलय शयन सुपेशल तापर श्याम निवेशित गोरी॥
मिथुन हास-परिहास परायन पीक कपोल कमल पर झोरी।
गौर श्याम भुज कलह मनोहर नीवी बंधन मोचत डोरी॥

कैसी अनूठी रसकेलि पूरित शब्दचित्रात्मक भावांजलि है। यही है नित्य मिलन मन्दिरकी झाँकी। यही है वह केलि-रस-स्थली, जहाँ दिव्य युगल प्रिया-प्रियतम रात्रिपर्यन्त विहार करते हैं। तभी यहाँ भूतल प्राणियोंका निशा-वास वर्जित है।

चीरघाट—अत्र गोपीजनवल्लभ श्यामने लौकिक चीरसे गोपियोंको मुक्तकर जीव व आत्माका ऐक्य स्थापित किया था।

रासमंडल—चैतन्य मतावलम्बियोंके अनुसार यह रासमंडल प्रिया-प्रियतम की नित्य रास-स्थली है। इसी कारण यहाँ नित्य रासकी परम्पराका निर्वाह किया जाता है। नित्य श्रीवृन्दावन धाम है, नित्य किशोर व नित्य किशोरी, नित्य सहचरी और नित्यही रास-क्रीड़ा है, जैसा कि ध्रुवदासजी महाराज कहते हैं—

नित्य किशोरी नित्य किशोर, नित वृन्दावन नित निशि भोर।
नित्य सहचरी नित्य विनोद, नित आनँद बरसत चहुँ ओर॥
नित्य विहार नितहि सिंगार, पल-पल पावत सुख कौ सार।
नित्य सखिनु कैं यही अहार, नित्य सुरत रत करत विहार॥

निधिवन—स्वामी हरिदासके श्यामा-श्यामकी लीला-स्थली अनन्त महिमा-मंडित वह भूमि है, जहाँ स्वामीजीने अपनी साधनाके जादूसे वशीभूतकर 'श्यामा-श्याम' का साक्षात्कार किया था। श्रीबाँकेबिहारीलालकी प्राकट्य-स्थली, कुंज-निकुंजोंकी प्राकृतिक-कमनीयतासे आपूरित, सुषमा-सम्पन्न सौन्दर्य निधान, इस वनविभागके दर्शनसे ऐसा भास होता है, मानो तमालरूपी कृष्ण, वल्लरीरूपी राधासे गुम्फित हो कण-कणमें विहारकी चरम परिणतिको नर्तित कर रहे हों। जैसा कि प्रेम-लीलामें ध्रुवदासजी कहते हैं—

रूप बेलि प्यारी बनी, प्रीतम प्रेम तमाल।
द्वै मन मिलि एकै भए, श्रीराधावल्लभ लाल॥

किन्तु श्याम-गौरके रूपको किस विधि बखाना जाय, क्योंकि विवशता है, तुलसीके शब्दोंमें—

स्याम गौर का कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

वंशीवट—यह वट दर्शकको उस भावसे तरंगित करता है, जिससे श्यामने वेणुका स्वर फूँक गोपियोंको मदमत्त कर दिया था। रासकी वेला और वंशीका स्वर यहींसे ऐसा गुंजरित होता था कि यूथकी यूथ गोपियाँ सुध-बुध खो दौड़ पड़ती थीं और गाती थीं—

बंसी वारे मोहना, बंसी नेकु बजाय।
बंसी तेरी सुनत ही, घर अँगना न सुहाय॥

ब्रह्मकुंड—यह वह पौराणिक स्थल है, जहाँ ब्रह्माजीने तपस्या की थी। पासही अशोक-वृक्ष है। कहते हैं, यह वृक्ष वैशाख शुक्ला द्वादशीके मध्याह्नमें एक सुमन मात्रसे कुसुमित होता है।

वेणुकूप—वंशी द्वारा उद्भूत यह वेणुकूप श्रीराधाकी प्यास बुझानेकी अद्भुत घटना का बखान करता है।

दावानल कुंड—उस पौराणिक घटनाका स्मरण कराता है, जब कि कालीदमनके अवसर पर भगवान् कृष्णने दावाग्निको पी लिया था।

ज्ञानगुदड़ी—जनश्रुत्यनुसार उद्धव व गोपियोंके मध्य ज्ञान-चर्चा इसी स्थान पर सम्पन्न हुई थी। यह वह उद्‌भट स्थल है, जहाँ ब्रह्मज्ञानी पंडित उद्धवके ज्ञानके पर्देको गोपियोंके प्रेमने चीर-चीर कर डाला था। गोपियों के इस प्रश्नका कोई उत्तर न था—

ऊधो ! मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम संग, को आराधै ईस ?

अन्ततः प्रखर तर्क ज्वालासे उद्धव विदग्ध हुए, ज्ञान परास्त हुआ और उनका प्रेम-नवनीत पिघल उठा। गोपियोंकी इस भाव-व्यंजनाको श्रवण कर—

टूक टूक ह्वैहै मन मुकुर हमारो हाय,.
यातें कठोर बैन पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तो बसकें उजार्‌यो मोह,
मन में हजार मनमोहन बसावौ ना॥

उद्धवका ज्ञान गल गया, मन पसीज उठा—प्रेमकी पीड़ासे और रसका शतधार स्रोत फूट पड़ा। वे तत्क्षण समझ गए इस तत्त्वको कि—

नारद से शुक व्यास रटें, पचि हारे तहू पुनि पार न पावें।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भर छाछ पै नाच नचावें॥

ऐसा है श्रीवृन्दावन धाम; जहाँका कण-कण चिन्मय प्रेम रस-रूप है। जहाँकी रज राधा-कृष्ण तत्त्वसे क्वणित हो, भक्त-परिकरको रसप्लावित करती है। जहाँ मैयासे मचल-मचलकर माखन-रोटी खानेवाला, गोचारण व्रतधारी गोपाल आजभी वंशी बजाता है और जहाँ रासेश्वरी राधा सर्वत्र विराजमान हैं। तभी तो 'राधा-सुधानिधि' वाणीमें श्रीहितजी उद्‌गान करते हैं कि राधाकी रोम-राजि वृन्दावनकी यमुना है। अंगोंकी दीप्ति-प्रभा वृन्दावने पुष्पित वन्धूक पुष्प है। नाभि-विवर्त्त ही वृन्दावनीय सरोवर हैं। वक्षोजही वृन्दावन स्थित पुष्प-गुच्छ हैं। भुजाएँ वृन्दाविपिनकी लतिकाएँ हैं और उनके नूपुरकी झंकार मधुकरोंका मधुर गुंजन है।

धन्य-धन्य है, ऐसी नित्य-विहार-भूमि वृन्दावन-स्थली, जहाँके रजकणके दर्शन मात्रसे मन ऐसा निर्मल हो जाता है, जिसका साक्षित्व कबीरदासका अनुभव है—

मन तो यों निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पीछे पीछे हरि फिरें, कहत कबीर कबीर॥

भिक्षुक की पूजा

श्री रामनाथ वेदालंकार

शौनक कापेय और अभिप्रतारी काक्षसेनिको भोजन परोसा जा रहा था। इसी बीच एक ब्रह्मचारी आया और उसने भिक्षाकी याचनाकी, परन्तु उन्होंने उसे भिक्षा नहीं दी।

ब्रह्मचारीने कहा—एक देव है, जो चार महात्माओंको निगल लेता है, वही भुवनका रक्षक है। वह सबमें निवास करता है, किन्तु देखनेवाले उसे देखते नहीं। उसीके लिए यह अन्न पकाया जा रहा है, उसीको नहीं दिया गया।

दोनोंने यह पूछा—वह कौनसा देव है ब्रह्मचारिन् ?

ब्रह्मचारीने उत्तर दिया—'सूत्रात्मा वायु' वह देव है। चार महात्मा अग्नि, सूर्य, चन्द्र और जल हैं। जब अग्नि बुझती है, तब वायुमें ही लीन होती है। जब सूर्य और चन्द्र अस्त होते हैं तब वायुमें ही लीन होते हैं। जब जल सूखते हैं, तब वायुमें ही लीन होते हैं। वायुदेव इन चारोंको निगल जाता है। ये चारों वायुके अन्न हैं। यह हुई अधिदैवत् अर्थात् प्रकृतिपरक दृष्टि।

फिर उसने कहा कि अध्यात्ममें अर्थात् शारीरिक दृष्टिसे 'प्राण' ही वह देव है। चार महात्मा हैं वाणी, चक्षु, श्रोत और मन। जब मनुष्य सोता है, तब वाणी प्राणमें ही लीन होती है, चक्षु प्राणमें ही लीन होते हैं, श्रोत प्राणमें ही लीन होते हैं, मन प्राणमें ही लीन होता है। प्राणदेव इन चारोंको ही निगल लेता है। अतः ये प्राणके अन्न हैं।

यह बताकर ब्रह्मचारीने कहा कि यह सयुग्वा रैक्व नामक ऋषिकी दी हुई रहस्य विद्या है। यह सूत्रात्मा वायु या प्राणदेव सबके अन्दर वास करता है। सब अन्न उसीको पहुंचते हैं। मेरे प्राण और तुम्हारे प्राण एक ही हैं। प्राणकी तृप्तिके लिए यह अन्न पकाया गया था, प्राणने माँगा, प्राणको नहीं दिया गया।

शौनक कापेयने ब्रह्मचारीके कथनपर मनन किया, तो वह उसपर रीझ गया। वह स्वयं निम्न शब्दोंमें प्राणकी स्तुति करने लगा—

> आत्मा देवानां जनिता प्रजानां हिरण्यदंष्ट्रो बभसोऽनसूरिः।
> महान्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमानो यदन्नमस्ति।

यह प्राण देवोंका आत्मा है। प्रजाओंका उत्पादक है। हिरण्यमयी उसकी दंष्ट्राएँ हैं जो कभी विकृत नहीं होतीं। वह भक्षक है, प्रेरक है, उसकी महिमा बड़ी महान् है, वही अन्नको खाता है, किन्तु उसे कोई नहीं खाता।

फिर उसने ब्रह्मचारीसे कहा—हम भी इसी देवके उपासक हैं, विस्मृतिवश उसे भूले हुए थे। यह कहकर उसने उस भिक्षुककी पूजाकी और उसे भिक्षा दिलवा दी।

पौराणिक आख्यायिका

देवराज

श्रीकृष्णगोपाल माथुर

सर्वाधार, सर्वव्यापी, सर्वेश्वर, सर्वोपरि, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, शुद्धस्वरूप, शक्तिपति, आशुतोष, भगवान् शिवशंकर जिसपर कृपा करते हैं, उसके अनन्त घोर पापोंको इस प्रकार नष्ट कर देते हैं, जैसे विशाल रुईके ढेरको छोटी-सी चिनगारी बातकी बातमें भस्म करके राखका ढेर बना देती है।

ऐसे ही पापी, दुराचारी ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न देवराज पर भी प्रभु भोलेनाथने अहैतुकी दया करके उसे अपने शिवलोकका निवासी बना दिया था।

प्राचीन कालकी घटना है। देवराज किरातोंके नगरमें रहता था। जन्मसे ही उसे सद्-शिक्षा, सत्संग और विद्याध्ययनका अवसर नहीं मिला। वह सहज ही कुसंगतिके संसर्गमें आ गया। ज्ञान, ध्यान, भगवत्-आराधना, पूजा-पाठको वह जानता ही कैसे, जबकि शठोंके गिरोहमें फंस गया था। अतः वह न केवल स्नान-संध्या, ब्राह्मणोंके कर्म, परोपकार परायणतासे दूर रहा, बल्कि कुसंगतिके कारण वेश्यागामी भी बन गया था। गरीब था। दरिद्रताके कारण पैसा कहाँ था उसके पास—जो वेश्याको देकर वेश्याको अपने प्रति खुश और आकर्षित रख पाये। इसके लिए वह वैश्य-वृत्तिमें तत्पर हुआ, किन्तु इसमें भी उसने सचाई और ईमानदारीको त्याग दिया था। उसने अनेक घृणित कार्य अपनाये। यहाँ तक कि विश्वास-पात्र लोगोंको कई बहाने रचकर मारकर उनका धन सहजहीमें हड़प लेता। उसमेंसे भी थोड़ा धन कभी उसने पुण्य-कर्ममें नहीं लगाया। जीवनभर उसने पाप-कर्म ही किये। सभी प्रकारसे वह आचार-भ्रष्ट होगया था।

पापार्जित धन घरमें ठहरता भी नहीं। धीरे-धीरे उसका वह धन तो न जाने कहाँ चला गया, पर जनसाधारण उसको पास बैठाना भी पसन्द नहीं करते थे। वह इधर-उधर पागलोंकी तरह घूमता। अन्तमें भिक्षावृत्ति करने लगा।

उसका न तो कोई घर रहा और न कोई हितैषी। वह अपने पापोंका भोग भोगनेके लिए तरह-तरहके कष्ट पाता अनेक स्थानोंमें भटकने लगा।

× × × ×

एक दिन देवराज भ्रमण करता प्रतिष्ठानपुरमें जा पहुँचा, जो अब प्रयागके पास झूंसी नामसे विख्यात है। वहाँ एक विशाल शिवमन्दिरमें बड़े-बड़े सन्त-महात्मा, साधु-संन्यासी, यती-

विद्वान् भारी संख्यामें एकत्र हो रहे थे। देवराज इन सबको देखकर शिवालयके एक कोनेमें ठहर गया। भूखा-प्यासा तो था ही, ज्वरभी हो आया। फिरभी इन महात्माओंके दर्शन-लाभसे उसके भ्रान्त-चित्तमें एक प्रकारकी शान्ति-रेखाका उद्भव हो रहा था, जिससे ज्वरकी पीड़ामें उसको कुछ आराम मिलनेका आभास होने लगा।

उस शिवालयमें एक चरित्रवान् सदाचारी, शान्त और सन्तोषी ब्राह्मण शिवपुराणकी कथा बड़ेही भक्ति-भावसे सुना रहे थे। श्रोतामंडली आनन्द-विभोर हो रही थी। भक्तिका प्रवाह बह रहा था। देवराजभी ज्वरकी दशामें ही पड़ा शिवपुराणकी कथाओंको सुनने लगा। गंग, चन्द्र, सर्प, मुंडमाल, भस्म, बाघम्बर धारण करनेवाले परात्पर ब्रह्म शिवशंकरकी कृपा-कोरके फलस्वरूप देवराजको शिवपुराण सुननेमें रस आने लगा। रस-रसिक, भक्त, शिवआराधक कथावाचकजीकी वाणीमें जैसी मधुरता लालित्य था, वैसा देवराजने कभी सुनाही नहीं था।

पुण्य-प्रद शिवपुराणकी मधुर-रसमय कथा सुनते-सुनते देवराजकी सद्वृत्तियाँ जागीं, मनकी मलिनता दूर हुई और उसमें पुण्योदय हुआ।

निरन्तर कथा सुनते-सुनते ज्वरके कारण एक मासके पश्चात् देवराज इस संसारसे चल बसा। उसके जीवनभरके भारी पाप-कर्मोंका लेखा-जोखा एकत्र हो ही गया था। इसीसे यमराजके आज्ञाकारी दूत आये और उसे बाँधकर यमपुरीमें ले गये।

इतनेमेंही शिवलोकसे सदाशिवके पार्षदभी वहीं आ पहुँचे। उन पार्षदोंके गौरवर्ण थे, शरीरकी कांति कर्पूरके समान श्वेत और उज्ज्वल थी। रुद्राक्षकी माला पहने थे। उन्होंने यमपुरीमें पहुँचकर यमदूतोंको पकड़कर मारा-पीटा और बार-बार धिक्कारा तथा देवराजको यमदूतोंके चंगुलसे छुड़ा लिया।

× × × ×

सदाशिवके पार्षद अपने साथ रत्नजड़ित पुष्पक विमान लेते आये थे। उसपर देवराजको बैठाकर वे कैलासको जानेकी तैयारी करही रहे थे कि यह खबर बिजलीकी भाँति सारी यमपुरीमें पहुंच गई। सबको आश्चर्य होरहा था कि यमपुरीमें आये हुए पापीको, कौन ऐसा सर्वसमर्थ है, जो वापस ले जा रहा है! इस अनहोनी घटनाके फैल जानेसे चारों ओर भारी कोलाहल मच गया। उस कोलाहलको सुनकर धर्मराज यम महाराज बाहर आये और पूछने पर सारा हाल जाना। यमराजने पासही खड़े हुए शिव-पार्षदोंको देखकर तत्काल उनका आदर-सत्कार करते हुए अभिवादन किया और उन्हें विविध रत्नोंसे जटित एक सुन्दर आसनपर बिठाकर उनका विधिवत् पूजन किया।

धर्मराजने ज्ञानदृष्टिसे देवराजके पाप-पुण्योंका लेखा-जोखा जान लिया था। शिवपुराणके श्रवणसे अब देवराज शिवपुरीमें स्थान पानेके योग्य बन गया है—यह जान लेनेमें यमराजको तनिकभी विलम्ब न लगा। वे शिवशंकरके भयसे पार्षदोंसे अपने दूतोंकी भूलके सम्बन्धमें बार-बार क्षमा-याचना करने लगे और ससम्मान देवराजके साथ उन्हें शिवलोक विदा कर दिया।

साहित्य पुरातत्वकी कसौटीपर

महाभारत युद्ध-काल

श्रीरमेशचन्द्र शर्मा.

महाभारतके युद्ध-कालकी ऐतिहासिकतापर साहित्य, ज्योतिष, परम्पराओं एवं अनुश्रुतियोंकी दृष्टिसे अब तक पर्याप्त विवेचन हो चुका है।

इतिहासका मेरुदण्ड पुरातत्व है और वही इसका वैज्ञानिक पक्ष भी है। पुरातात्विक उत्खननोंसे प्राप्त शिलालेख, अभिलिखित मूर्तियां, सिक्के, मुद्राएं आदि ऐसे साधन हैं, जिनके माध्यमसे किसीभी जटिल समस्याके समाधानमें पुष्ट तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं। महाभारतका युद्ध-काल एक ऐसा जटिल प्रश्न है जिसपर सहसा निष्कर्ष प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है।

यह सर्वविदित है कि एक लाख श्लोकोंका महाभारत पाँचवीं शताब्दी ईसवीसे पूर्व बन चुका था, क्योंकि उच्च कल्पके महाराज सर्वनाथके सम्वत् १९७के लेखमें इसका उल्लेख है। यह कलचुरि सम्वत् है और इसका समय ४४५ ई० आता है। अतः ४४५ ई० से नीचे महाभारतको लानेका प्रश्नही नहीं उठता। यूनानी लेखक डायोन कायसोस्टोमने पहली शताब्दी ई० में लिखा है कि भारतमें एक लाख श्लोकोंका 'इलियड' जैसा ग्रन्थ है। बेबर इस भारतीय 'इलियड' को महाभारत मानते हैं। अतः प्रचलित महाभारत पहली शताब्दी ई० से पूर्व रचित होना चाहिए। दूसरी ओर महाभारतमें बुद्धका उल्लेख है, इस दृष्टिसे इसका प्राचीनतम रचनाकाल ५वीं शताब्दी ई० पूर्व और पहली शताब्दी ई० के बीच मानना अधिक उपयुक्त होगा।

अब हमें महाभारतकी घटनाओंपर विचार करना है। ज्योतिषशास्त्रका मत संक्षेपमें यों है—मोड़क ग्रहोंकी स्थितिके अनुसार महाभारत घटना-चक्रको पाँच हजार ई० पूर्वमें रखते हैं, जबकि सायन और निरयण नक्षत्रोंका योग हुआ और वसंत संपात पुनर्वसु नक्षत्रमें था। वराह मिहिर, कल्हण और कुछ आर्यसमाजी कलियुगके आरम्भके ६५३ वर्ष बाद अर्थात् २४४८ ई० पू० में महाभारतकी घटना स्थिति मानते हैं। रमेशचन्द्र दत्त वंशावलीके अनुसार १४००ई०पू० की स्वीकृति देते हैं,क्योंकि उन्होंने बृहद्रथसे नन्दवंशका समय पौराणिक-सूचीसे आँक लिया है। दूसरी ओर गणनाके आधारपर विलन्डी अइयर १४ अक्टूबर ११९४ ई० पूर्वमें महाभारत-युद्धका आरम्भ मानते हैं।

प्रायः सभी विद्वान् इस तथ्यको मान्यता देते हैं कि महाभारत-युद्ध यदि हुआ तो वह द्वापरके अन्त और कलियुगके आरम्भमें हुआ क्योंकि ग्रन्थका अन्तःसाक्ष्य ऐसे कुछ सूत्रोंका उल्लेख करता है जैसे 'प्राप्तं कलियुगं विद्धिः' अथवा 'एतत् कलियुगं नाम अचिरात यत् प्रवर्तते' एवं 'अन्तरेण चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत। स्यमन्तकपंचके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः।' इन आलेखोंके आधारपर प्राचीन विद्वानोंने द्वापर और कलियुगकी संधिका भी समय निकालने का प्रयास किया है, तदनुसार आर्यभट्ट इसे ३१०१ ई० पू० में मानते हैं। 'सूर्य सिद्धान्त' के अनुसार फाल्गुन कृष्णपक्ष अमावस्या बृहस्पतिवार मध्यरात्रिको यह समय आता है जो १७, फरवरी ३१०१ ई० पू० ठहरता है। दूसरी शताब्दी ई० पू० में हुए पतंजलि अपने महाभाष्य में बलराम और कृष्णकी चर्चा करते हैं, 'संकर्षण द्वितीयस्य बलम् कृष्णस्य वर्द्धताम्' अर्थात् संकर्षणके साथ कृष्णकी सेनाकी विजय हो, इसी प्रकार प्रसादे धनपति रामकेशवानाम् कार्तिकमें कुबेर; बलराम और केशवके मन्दिरका ज्ञान होता है। उधर पांचवीं शताब्दी ई०-पू० में अष्टाध्यायीके प्रणेता पाणिनि कृष्ण और अर्जुनको पूजनीय रूपमें मानते हैं। ईसासे पूर्व लिखे घट-जातक आदि बौद्ध-साहित्यमें श्रीकृष्ण और उनके कुलका वर्णन है।

छान्दोग उपनिषद्में देवकीपुत्र कृष्णका उल्लेख है, जिसका समय छठी शताब्दी ई०-पू० के पहलेका है। उधर यास्कके निरुक्तमें भी कुछ संकेत मिलते हैं, जो छान्दोगसे पहले लिखा गया है। आर०जी० भण्डारकर कई कृष्णोंको मान्यता देते हैं, किन्तु तिलक, चिंतामणि वैद्य आदि भण्डारकरसे सहमत नहीं हैं। गीता-रहस्यमें बाल गंगाधर तिलकने श्रीकृष्णको ईसासे १४०० वर्ष पूर्व माना है। किन्तु उनके तर्कोंमें कुछ असंगति है। एक ओर तो वह छान्दोग उपनिषद्के देवकीपुत्र कृष्णको महाभारतका कृष्ण मानते हैं और छान्दोग उपनिषद्का समय ईसासे १६०० वर्ष पहला बताते हैं, किन्तु दूसरी ओर श्रीकृष्णको केवल १४०० ई० पू० में ही निश्चित् करते हैं। डा० राधाकुमुद मुकर्जी यह समय १४०० ई०पू० और पार्जीटर अपनी गणनाके अनुसार इसे ९५० ई० पू० में मानते हैं। भारतीय विद्या-भवन द्वारा प्रकाशित 'वैदिक एज'में महाभारत युद्धका समय १४०० ई० पू० दिया गया है।

इतिहासकी दृष्टिसे एक और महत्वपूर्ण साक्ष्य है यूनानी राजदूत मेगस्थनीजका जो चौथी शताब्दी ई० पू० में चन्द्रगुप्त मौर्यकी सभामें विद्यमान था। उसके ग्रंथ इंडिकामें उल्लेख है कि सैण्ड्राकोटस और डायानिसासके बीच १५३ पीढ़ियाँ हुईं जिनका समय ६०४२ आता है। हेरावलीज, डायानिसाससे १५ पीढ़ी बाद हुआ। डायानिसासका व्यक्तित्व संदिग्ध है। हेराक्लीजको अधिकतर विद्वान् हरि या श्रीकृष्ण मानते हैं और सेण्ड्राकोटस चन्द्रगुप्त मौर्यका नाम है। मेगस्थनीजके विवरणके अनुसार शूरसेन जनपदके लोग हेराक्लीज के भक्त थे और उनके नगरका नाम मिथोरा था। हमें यहाँ डायानिसाससे हेराक्लीज तक की १५ पीढ़ियां १५३ पीढ़ियोंसे घटा देनी हैं। जो शेष १३८ पीढ़ियाँ बचती हैं उन्हें ऐतिहासिक सिद्धान्तसे २० वर्ष प्रति पीढ़ीका समय देनेपर १३८ × २० = २७६० वर्ष होते हैं,

जो चन्द्रगुप्त मौर्यसे पहले हुए। चन्द्रगुप्त मौर्यका समय चौथी शताब्दी ई० पू०का प्रारम्भ है और इस प्रकार यदि इसमें ३२० वर्ष और जोड़ दिये जायें तो यह समय २७६०+३२० =३०८० ई० पू०का निश्चित होता है। इसमें १९७४ और जोड़ने पर मेगस्थनीजके अनुसार यह समय अबसे ५०५४ वर्ष पूर्व बैठता है। इस प्रकार हम महाभारत युद्धको विदेशी यात्रीके प्रायः निष्पक्ष प्रमाणके आधार पर ५००० सालसे भी कुछ पुराना मान सकते हैं और यह समय ज्योतिषकी गणनासे भी मेल खाता है।

मथुरा संग्रहालयके एक शिलापट्ट में वसुदेवको एक टोकरीके साथ यमुना पार करते हुए दिखाया गया है। टोकरीके ऊपरका हिस्सा भग्न है, अतः किसी शिशुकी आकृतिका बोध नहीं होता, किन्तु जिस प्रकार पुरुषको उफनती हुई यमुना और ऊपर हाथ कर टोकरीको साधे हुए प्रदर्शित किया गया है, वह और कोई घटना नहीं हो सकती। मकर, कालीनाग, कच्छप और मत्स्योंसे संकुलित वेगवती यमुना का दृश्य बड़ा मनोहारी है। यह प्रस्तर खण्ड कुषाण कालके आरम्भिक चरणका है और इसे पहली शताब्दी ई० में रख सकते हैं और अब तक प्राप्त सभी कृष्णलीला-अंकनोंमें यह प्राचीनतम माना जाता है।

आरंभिक प्रतिमाओंमें कृष्ण का वह स्वरूप नहीं दिखाई देता, जिसे हम आज देखनेके अभ्यस्त हो गये हैं। क्योंकि आजके पीताम्बरधारी, वंशी लेकर नित्य रासमें लीन श्रीकृष्ण मध्ययुगीन कल्पनाकी साकार प्रतिमूर्ति हैं और यही कारण है कि हम अपने आदि कृष्णको नहीं पहचान पाते। इसके लिए अपेक्षा है उस दिव्य दृष्टिकी, जो मूर्ति शास्त्रके निरन्तर अनुशीलनसे प्राप्त होती है। इसीलिए मथुराको उनका जन्मस्थान माननेपर भी हमें प्राचीन मूर्तियोंका प्रायः अभाव दिखाई देता है। वस्तुतः श्रीकृष्णको चतुर्भुजी वासुदेव विष्णुके रूपमें मान्यता मिली थी। अतः कुषाणकालीन विष्णु-मूर्तियोंमेंसे अनेक हमें श्रीकृष्णका बोध कराती हैं। उनके हाथमें कन्धेतक लम्बी और विशाल गदा है, एकमें चक्र है, एक हाथ अभय मुद्रामें है और अन्य कुछ मोटी-सी अज्ञात वस्तु लिये है, जिसे बिजौरा फल कह सकते हैं।

इस प्रकारकी विष्णु-मूर्तियोंके हमें कई स्वरूप दिखाई देते हैं। कहीं वे ललितासनमें बैठे हैं, कहीं वीर वेषमें खड़े हैं। एक समन्वित मूर्तिमें मुख्य विष्णु प्रतिमासे अन्य आकृतियाँ निकलती हुई दिखाई गई हैं, जिनमें एक निश्चित रूपसे बलराम हैं, जिनके हाथमें प्याला है। अन्य आकृतियाँ नग्न हैं। यह मूर्ति श्रीकृष्णके उस पंचवृष्टि वीरस्वरूपको प्रकट करती है जिसके सूत्र पांचरात्र आदि प्राचीन साहित्यमें उपलब्ध होते हैं। यह मूर्ति भी कुषाणकाल के आरम्भकी है। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि श्रीकृष्ण कुषाणकालमें देवरूपमें अधिष्ठित हो चुके थे और उनकी मूर्तियाँ बनने लगी थीं। उनके साथ अन्य कुलदेवोंकी मूर्तियाँभी थीं, जिनमें बलराम प्रमुख हैं।

कुषाणकालसे भी पूर्व हम पहली शताब्दी ई० पू०के दो महत्त्वपूर्ण शिलालेखोंको प्रस्तुत करते हैं, जिनमें से एक मंदिरकी द्वारशाखाका भाग है, जिसपर कल्पलताका सुन्दर अंकन है और उसके पार्श्व भागमें उत्कीर्ण अभिलेखसे ज्ञात होता है कि भगवान्

वासुदेवके लिए चतुःशाल तोरण और वेदिकासे युक्त स्थलका निर्माण वस्तु नामक व्यक्तिने महाक्षत्रप शोडाषके समय किया। भगवान् कृष्णको समर्पित इस स्थानको महास्थान कहा गया है। महाक्षत्रप शोडाषके ही समयका एक अन्य विशाल शिलापट्ट है, जो मथुरासे लगभग ७ मील दूर मोरा नामक ग्रामसे प्राप्त हुआ। इसमें पंचवृष्टि वीरोंकी मूर्तियोंका उल्लेख है, जो किसी शैलदेव गृह अर्थात् पत्थरके बने मंदिरमें स्थापितकी गई। ये मूर्तियाँ इतनी सुन्दर और चमकदार थीं कि इनमेंसे किरणें-सी फूटती थीं।

इन पंचवृष्णि वीरोंमें किनकी गणना की जा सकती थी, यह अभी विवाद ग्रस्त है, तथापि अधिकतर मान्यता यह है कि इनमें श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और साम्ब सम्मिलित थे। श्रीकृष्णतो वृष्णियोंके संघ मुख्य थे ही, अतः उनका इन तोषा नामक उपासिका द्वारा स्थापित इस शैल देवगृहमें विराजमान होना स्वाभाविक है। प्रथम शताब्दी ई० पू० का ही एक सिक्का ब्रिटिश म्यूजियम में है, जिसके प्राप्ति स्थलका ठीक-ठीक पता नहीं है। किन्तु यह किसी विष्णुमित्र नामक मित्रवंशी राजाने चलाया होगा। मित्रवंशका उस समय व्रज प्रदेशपर अधिकार था और वे लोग भगवान् कृष्णके उपासक रहे होंगे, क्योंकि सिक्केमें वासुदेव विष्णु अंकित हैं। आकृतिसे यद्यपि भुजाओंकी संख्याका ठीक बोध नहीं होता तथापि सर अलक्जेण्डर कनिंघम और जॉन एलन दोनोंही वासुदेव प्रतिमाका अंकन मानते हैं।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भगवान् कृष्णकी भक्तिधारा केवल व्रज तक ही सीमित नहीं थी, अपितु उसकी धार्मिक तरंगोंसे सैकड़ों योजनोंका भूभाग आप्लावित हो उठा था। श्रीकृष्णके प्रति निष्ठा प्रदर्शन करने वाली भावनाओंको भागवत सात्वत, एकांतिक, अथवा नारायणधर्मसे अभिव्यक्त किया जाता था। राजस्थानमें चित्तौड़के पास घोसुण्डी अथवा प्राचीन मध्यमिकासे ईसासे २०० वर्ष पहलेका एक शिलालेख मिला है। एक साक्ष्य ग्वालियरके पास विदिशा नगरसे लगभग दो मील दूर स्थापित गरुड़-स्तम्भ है, जिसमें उल्लेख है कि महाराज भागभद्रकी राजसभामें यवन राज अंतअलिकिलसका राजदूत हेलियोदोर आया और उसने भगवान् कृष्णकी उपासनामें एक गरुड़ध्वजकी स्थापना की।

श्रीकृष्णसे भी पुरानी हमें बलरामकी मूर्ति मिलती है। मथुरासे प्राप्त दूसरी शताब्दी ई०पू०की एक बलराम मूर्ति अब लखनऊ संग्रहालयमें है, इसमें उन्हें हल और मूसल लिये सर्पफणोंसे आच्छादित दिखाया गया है। यहाँ यह भी उल्लेख कर देना अभीष्ट होगा कि महाभारतकालकी इन दो प्रसिद्ध विभूतियोंको जैन-धर्मने भी अपनाया किन्तु गौण रूपमें। मान्यता यह है कि २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ श्रीकृष्णके ताऊ समुद्रविजयके पुत्र थे जो शौरिपुर अर्थात् बटेश्वरके आसपासके राजा थे। सम्भवतः इसी दृष्टिसे कुषाण युगसे ही नेमिनाथके साथ बलराम और कृष्ण का अंकन आरम्भ हो गया, जो मध्यकाल तक प्रचलित रहा।

पुरावेत्ताओंने कुछ ऐसे नगरोंकी खुदाई आरम्भ की, जिनका बारम्बार महाभारतमें उल्लेख आता है और वे नगर हस्तिनापुर, अहिच्छत्र, मथुरा आदि हैं। इन सभी स्थानों

पर बहुत बड़े बड़े टीले थे, जिनसे प्राचीन सांस्कृतिक-अवशेष यथासमय प्राप्त हुआ करते थे। अतः पुरातत्ववेत्ताओंका इन स्थलोंको उत्खनन करनेका संकल्प उचित ही था।

खुदाईके जो परिणाम अब तक मिले हैं, उनके अनुसार सबसे निचली सतहमें सलेटी रंगके मिट्टीके वे बर्तन उल्लेखनीय हैं, जिनपर कुछ काली रेखाएँभी अंकित हैं। पारिभाषिक रूपसे इन्हें पेन्टेड ग्रेवेयर कहते हैं। हस्तिनापुर, अहिच्छत्रा और मथुरा तीनोंकी यही स्थिति है। पिछले आठ वर्षोंसे पश्चिमी जर्मनीके उत्खननदलने मथुरासे ३५ कि०मी० दूर सोंख नामक स्थानपर खुदाई कराई और वहाँसे भी इन्हीं बर्तनोंकी सबसे नीचेके स्तरपर प्राप्ति हुई। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षणके भूतपूर्व महानिदेशक प्रो० बी०बी० लालने हस्तिनापुरके उत्खननके पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि पेन्टेड ग्रेवेयर बर्तनही महाभारतकालीन संस्कृति के द्योतक हैं। इन बर्तनोंके साथ कुछ कार्बनकी वस्तुएँभी मिलीं, जिनका कार्बन १४ वैज्ञानिक पद्धतिसे विश्लेषण किया गया और उ सविश्लेषणमें यह समय लगभग १०००ई०-पू० सिद्ध हुआ।

कुछ पुरातत्ववेत्ता पेन्टेडग्रेको अलोह संस्कृति घोषित करते हुए इसे वैदिक सभ्यताका अन्तिम चरण मानते हैं किन्तु यहभी एक भ्रान्त धारणा है। एक तो वैदिक साहित्यमें लोहेका वर्णन है, दूसरे मुझे स्वयं १९६० में मेरठ जिलेके उखलीना आलमगीरपुर स्थानपर उत्खननसे ही पेन्टेडग्रेवेयर के साथ लोहा मिला था। कालान्तरमें अन्य स्थानोंसे भी इसकी पुष्टि हुई। यहाँ यहभी स्पष्ट करना आवश्यक है कि मथुरामें पेन्टेडग्रेसे भी पहले ताम्रयुगीन अवशेष मिले हैं, जिनका समय लगभग ११००-१२०० ई० पू० या और पहला है। एक अवशेष कनिंघमको अबसे लगभग १०० वर्ष पूर्व मिला था और कुछ अवशेष हालमें ही सादाबाद तहसील से मिले हैं जो अब लखनऊ संग्रहालयमें हैं। किन्तु इनकी संख्या बहुत कम है और यह भी नहीं कहा जा सकता कि ये ताम्र-उपकरण महाभारत-संस्कृतिका प्रतिनिधित्व करते हैं।

वैदिक साहित्यके अध्ययन, महाभारतके अनुशीलन और पुरातत्वकी समीक्षासे ऐसे संकेत मिलते हैं कि भारतवर्षमें लोहेको अपवित्र और त्याज्य माना जाता था और इस धातु का प्रचलन होनेपर भी इसे समाजमें मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी। अथर्ववेदमें वर्णन है कि जब राजा पृथुने पृथ्वीका दोहन किया तो असुर लोग लोहेका पात्र लेकर आए थे। स्कन्दपुराण में भी आगे चलकर लोहासुर द्वारा पाण्डवोंपर आक्रमणकी चर्चा हुई है। इससे यह सिद्ध है कि लोहा असुरों द्वारा प्रयुक्त होता था और आर्य इसे हेय दृष्टिसे देखते थे। उसका रंग काला था, इसलिए भी वह निम्नकोटि का सदोष और आर्येतर माना जाता रहा होगा। महाभारतमें उल्लेख है कि यादवोंका अन्त साम्बके पेटसे निकले लोहेके मूसलसे हुआ। श्रीकृष्णके स्वर्गारोहणका कारण जरा नामक शिकारी द्वारा उनके पैर में लोहबाणके आघातसे बताया है।

यहाँ यह भी विचार कर लेना उपयुक्त होगा कि महाभारतकालीन-संस्कृति, क्योंकि

वैदिक संस्कृतिकी उत्तराधिकारिणी थी, अतः इसे ताम्रयुगीन संस्कृतिका ही एक अंग माना जासकता है। इसका ठीक-ठीक काल-निर्धारण अभी नहीं हो पाया है। भारतमें अनेक स्थलोंपर ताम्रयुगीन अवशेष मिले हैं और इसके वैभव और सम्पन्नताका पूरा परिचय हमें सिंधु-संस्कृतिसे मिलता है जो पूर्णतः अलोह थी, क्योंकि उसमें लोहेका कोईभी उपकरण प्राप्त नहीं हुआ है। साथही तांबा तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओंके प्रचुर अवशेष हैं। सिंधु संस्कृति अभी तक रहस्य बनी हुई है, क्योंकि जबतक उसकी तिथिका ठीक-ठीक बोध नहीं होजाता, तबतक उसके बारेमें कोई निष्कर्षपूर्ण बात कहना उचित न होगा। वैसे इसका समय लगभग २७०० ई०-पू० से १५०० ई० पू० के बीच मानते हैं। पहले इसके अवशेष केवल सिन्ध और पंजाबके उन क्षेत्रों तकही सीमित थे जो अब पाकिस्तानके अन्तर्गत हैं, किन्तु अब ये भारतके भी अनेक स्थलोंमें उपलब्ध हैं, जैसे गुजरातमें लोथल, पंजाबमें रोपड़ और मेरठमें आलमगीरपुर।

घनी अन्धकार की परतोंसे आवृत सिंधु-संस्कृतिसे प्रकाशकी एकमात्र किरण प्रस्फुटित हुई है। एक मिट्टी की गुटिका, जो पाश्चात्य पुरातत्ववेत्ता मैकेकी १९२७ से ३१ के बीच हुई मोहनजोदड़ोकी खुदाईसे मिली है। इसमें धार्मिकदृश्योंका अंकन-जैसा है। एक दृश्यमें दो व्यक्ति अपने हाथोंमें पेड़ पकड़े खड़े हैं। वृक्षदेवताने अपने हाथ उनकी ओर बढ़ा दिये हैं। मैके का अनुमान है कि इसमें श्रीकृष्णकी यमलार्जुन-लीलाका अंकन है। कुछ विद्वान् जिनमें डा०वासुदेवशरण अग्रवाल भी सम्मिलित हैं, इस व्याख्यासे सहमत हैं। (मैकेकी रिपोर्ट भाग १ पृ० ३५४-५५ भाग २ फलक ९० आकृति २३-२४ उत्खनन वस्तु सं० डी० के० १०२३) यदि इस सुन्दर कल्पनामें सत्यांश हो तो यह अनुमान लगाना होगा कि महाभारतके प्रमुखपात्र साढ़ेचारहजार वर्ष पूर्व इतनी ख्याति अर्जित कर चुके थे कि उनके कथानकोंका अंकन होगया था और इस दृष्टिसे महाभारत युद्धकी स्थिति अबसे लगभग ५ हजार वर्ष पहले माननी होगी, जो ज्योतिषके प्रमाणोंके द्वाराभी सिद्ध होती है।

जी चाहता है,
जितने लोग स्नेह दें,
उतनी जिन्दगी मैं पाऊँ,
ताकि हर-एकके लिए,
कम-से-कम
एक-एक बार
मर-मर जाऊँ।

—श्रीशिवप्रसादसिंह

पारलौकिक-ज्ञान कहाँसे पायें ?

डॉ० रवीन्द्रप्रताप राव

भगवद्भावनाके विज्ञानका परमोत्कृष्ट शास्त्र श्रीमद्भागवत है। जिस प्रकारका बोध नारंगी या आमका रस कहनेपर होता है, वैसा ही तात्पर्य संस्कृत शब्द "रस" से भी है। श्रीमद्भागवतके लेखक सबसे यह प्रार्थना करते हैं कि सब लोग श्रीमद्भागवतके रसका आस्वादन करें। आखिर ऐसा क्यों ? क्यों कोई भागवतरूपी फलका रसास्वादन करे ? ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि भागवत वैदिकज्ञानके कल्पवृक्षका पका हुआ फल है। कल्पवृक्षकी तरह वेदोंसे भी आपको जो चाहिए वह वस्तु प्राप्त हो सकती है। "वेद" से तात्पर्य "ज्ञान" है। वेद इतने पूर्ण हैं कि भौतिक जगतमें जिस प्रकारकी वस्तुका आनन्द आप लेना चाहते हैं, वह इनसे प्राप्त हो सकता है। दोनों प्रकारके ज्ञान (लौकिक एवं पारलौकिक) वेदोंमें हैं। इसीलिए वैदिक-सिद्धान्तोंका पालन करनेसे हम सुखी रहते हैं। यह किसीभी राज्यके नियमके समान है। यदि राज्यके नागरिक राज्यके नियमोंका पालन करें तो कोई अपराध-कार्य नहीं होंगे और नागरिकोंका जीवन आनन्दसे बीतेगा। बिना किसी कारणके शासक आपको तकलीफ देने नहीं आयेगा। यदि आप राज्यके नियमोंका पालन करते रहें तो दुख उठानेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।

इसी प्रकार बद्ध जीव भौतिक जगतमें आनन्द एवं भौतिक सुखका उपभोग करनेके लिए आते हैं। इन कार्योंमें वेद संरक्षण प्रदान करते हैं। इसका अर्थ यह है कि सुखोपभोग सब करें, परन्तु वेदोंमें बताए गये सिद्धान्तोंके अनुसार ही। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदोंमें सभी पदार्थ हैं।

हम लोग मन्दिरोंमें विवाहका समारोह करते हैं। विवाहमें एक लड़का और एक लड़कीको दाम्पत्य-सूत्रमें बाँधा जाता है। प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकारके समारोहकी आवश्यकता क्या है ? यह वैदिक रीति है। स्त्री और पुरुषका एक साथ रहना वेदसम्मत है, परन्तु इसके लिए वेदोंने विवाहका नियम बना दिया है ताकि स्त्री-पुरुष सुखसे रह सकें। वेदोंका उद्देश्यही मनुष्यको सुखी बनाना है। वैदिक-नियमोंका पालन करनेका यह तात्पर्य नहीं कि हम भोजन न करें, सोयें नहीं, अपनी रक्षा न करें एवं शारीरिक-सुखका आनन्द न उठायें; ऐसी कोई बात नहीं है। हम सबकी शारीरिक आवश्यकताएँ ठीक उसी प्रकार हैं, जिस प्रकार जानवरोंकी होती हैं। जानवर भी खाते हैं, सोते हैं, अपनी रक्षा करते हैं और मैथुन करते हैं। हम सबको भी इन सबकी आवश्यकता है। लेकिन इन कार्योंको करनेके लिए

वेदोंने कुछ नियम बना रक्खे हैं। ये नियम इसलिए बनाए गये हैं कि हमें दुःख न भोगना पड़े। वैदिक-नियमोंका दृढ़तासे पालन करनेपर अन्तमें हम सभी भौतिक-बन्धनोंसे मुक्त हो जायेंगे।

यह भौतिक-जीवन, चेतन आत्माके उपयुक्त नहीं है। यह कहना कि हम लोग भौतिक-जीवनका आनन्द उठा रहे हैं, अर्थका अनर्थ करना है। भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट रूपसे हमें यह निर्देश दिया है, जिसका पालन करके हम सुखसे तो रह ही सकते हैं, साथ ही, अन्तमें हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि हमारा वास्तविक जीवन तो आध्यात्मिक जीवन है। जैसे ही हमें अपनी आध्यात्मिक-स्थितिके विषयमें जानकारी हो जाती है, अर्थात् हम यह समझ लेते हैं कि हम ब्रह्म हैं, यह मानव-जीवन पूर्ण हो जाता है। दूसरी ओर यदि हम अपने आध्यात्मिक-जीवनकी खोज-खबर न रक्खें तो हमें बाध्य होकर कुत्तों और बिल्लियोंकी जिन्दगी जीनी पड़ती है। साथ ही इस बातकी भी पूरी सम्भावना बनी रहती है कि दूसरे जन्ममें हमें जानवरका शरीर मिलेगा। यदि अपनी गलतीसे या प्रकृतिकी सनकसे हमें पशु-योनि मिल गई तो फिर लाखों-करोड़ों वर्ष पुनः मानव-शरीर पानेमें लगेंगे।

भगवान् श्रीहरिने गीतामें कहा है—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥ (५।२३)

जो मनुष्य शरीरके त्यागसे पूर्वही काम-क्रोधसे उत्पन्न वेगको सहन करनेमें समर्थ है, वही योगी है और वही सुखी है।

अतएव मानव-शरीर हमें वेदोंके निर्देशका पालन करते हुए, आत्मानुभूति प्राप्त करनेके लिए दिया गया है। अनगिनत जन्मोंके अच्छे-बुरे कर्म-संस्कार हमारे मनपर अंकित रहते हैं। जब हम सत्संगमें लगे होते हैं या शुभकार्यों में प्रवृत्त रहते हैं, तब बुरे संस्कार मनमें नहीं उठते हैं। इसके विपरीत जब हम असत् कार्योंमें लगे होते हैं तो बुरे संस्कार मनमें अधिक उठते हैं।

बुरे संस्कार मनमें तो रहते ही हैं, अतएव उनका जागना भी स्वाभाविक ही है। हम सबको यह समझ लेना चाहिए कि ऐसे संस्कारोंके जागनेपर हम उनको कार्यमें परिणत होनेका अवसर न दें तो वे क्रमशः शान्त हो जायेंगे। इसीलिए अपनेको सदैव सत्कार्योंमें लगाए रहना चाहिए। ऐसा करनेपर शुभ संस्कार ही मनमें आयेंगे और पुराने बुरे संस्कार दब जायेंगे।

भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण कहते हैं कि वेदोंका अध्ययन करने तथा उनमें बताए गये नियमों एवं निर्देशोंका पालन करनेका तात्पर्य श्रीकृष्ण-भावनाको समझ लेना है। यही बात श्रीमद्भागवतमें भी कही गई है। इस प्रकार वेद हमें यह अवसर प्रदान करते हैं कि हम कई जन्मोंके बाद श्रीकृष्णको समझ सकें। भागवतको जीवनका सार तथा वेदोंका पका फल कहा गया है, क्योंकि भागवत सीधे रूपमें हमें यह बताता है कि हमें जीवनमें क्या करना चाहिए।

वेद चार प्रकारके हैं—(१) सामवेद, (२) ऋग्वेद, (३) अथर्ववेद और (४) यजुर्वेद। इन वेदोंका तात्पर्य अट्ठारण पुराणोंमें बताया गया है। पुनः इन अट्ठारह पुराणोंके तात्पर्य को एक सौ आठ उपनिषदोंमें समझाया गया है। उपनिषदोंका सार वेदान्त सूत्रोंमें बताया गया है और वेदान्त सूत्रोंकी व्याख्या श्रीमद्भागवतमें की गई है। यह सब कार्य एक ही लेखक द्वारा किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवत वैदिक ज्ञानका निष्कर्ष है।

उत्तर भारतमें नैमिषारण्य एक प्रसिद्ध तथा पवित्र वन हैं जहाँ पर सभी ऋषिगण एवं संत अपने जीवनकी आध्यात्मिक प्रगतिके लिये जाकर रहते थे। इसी वनमें इस युगमें सबसे पहले भागवत कही गई। जब इसकी चर्चा हो गई तो महान् सन्त श्रीसूत गोस्वामीसे लोगोंने पूछा कि अब जबकि श्रीकृष्ण परमधाममें चले गये हैं तो अप्राकृत ज्ञान कहाँपर मिलेगा? भगवद्गीता तो श्रीकृष्णने स्वयं कही थी और उसमें ज्ञानयोग, कर्मयोग, ध्यानयोग तथा भक्तियोग सभीका विवरण मिलता है। उपरोक्त प्रश्न पूछे जानेपर सूत गोस्वामीने यह उत्तर दिया कि श्रीकृष्ण स्वयं तो चले गये हैं, पर उन्होंने हम लोगोंके लिए श्रीमद्भागवत छोड़ दिया है। भागवत भगवान् श्रीकृष्णका शाब्दिक प्रतिनिनिधि (Sound Reppesentation) है। ठीक उसी प्रकार जैसे गीता श्रीकृष्णसे अभिन्न हैं। श्रीकृष्ण और उनका नाम भी अभिन्न है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण और उनके रूप भी उनसे अभिन्न हैं। ये सभी पूर्ण हैं। इसकी जानकारी अनुभूति होने पर होती है।

दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि भगवद्गीता और भागवत श्रीकृष्णके शाब्दिक अवतार (Sound Incarnation) हैं। वैदिक ज्ञानका फल होनेके कारण श्रीमद्भागवत श्रीकृष्णका साहित्यिक अवतार भी है। आप लोगोंने तोताको देखा होगा। तोताकी विशेषता यह है कि जब यह पेड़पर पके हुए फलका रसास्वादन करता है तो पका हुआ फल और और अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। प्रकृतिका ऐसा ही नियम है। श्रीमद्भागवत, वैदिक-ज्ञानका पका हुआ फल है और शुकदेव गोस्वामी (सूतके आध्यात्मिक गुरु) इसे स्पर्श कर रहे हैं। संस्कृतमें "शुक" शब्दका अर्थ तोता है।

श्रीमद्भागवतके लेखक व्यासदेवजी हैं, परन्तु सर्वप्रथम उसकी व्याख्या शुकदेव गोस्वामीने ही की। शुकदेव महाराजकी उम्र सोलह वर्षकी ही थी, जब उन्हें भागवतकी शिक्षा दी गई और उन्हें दिव्य प्रकाश मिल गया भगवान्‌के निर्विकार रूपकी धारणाका उन्हें पहले ही पूरा ज्ञान था और वे मुक्त पुरुष थे। परन्तु अपने पितासे श्रीमद्भागवत सुनकर वे श्रीकृष्णकी लीलाओंके प्रति आकर्षित हो गये और वे भागवतके प्रचारक एवं शिक्षक बन गये। सर्वप्रथम उन्होंने इसे महाराज परीक्षितसे कहा।

महाराज परीक्षित एक पवित्र तथा धार्मिक राजा थे, परन्तु दुर्भाग्यसे अपने पूर्व-कर्मोंके फलस्वरूप उन्हें एक ब्राह्मण बालकने यह शाप दिया कि वे सातवें दिन काल-कवलित हो जायेंगे। उन दिनों जब कोई ब्राह्मण किसी व्यक्तिको शाप दे देता था तो वह बात सच्ची हो जाती थी। ब्राह्मणोंमें किसीको भी शाप तथा वरदान देनेकी शक्ति थी।

महाराज परीक्षित समझ गये कि एक सप्ताहमें वे मृत्युको प्राप्त हो जायेंगे, अतएव वे इसके लिए अपनेको तैयार करने लगे। उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्र महाराज जन्मेजयको दे दिया और अपने परिवारको छोड़कर वे दिल्लीके पास यमुना तटपर जाकर रहने लगे। वे एक महान सम्राट थे। अतएव बहुतसे विद्वान उनसे मिलनेके लिए आए।

परीक्षित सभी सन्तोंसे यह पूछ रहे थे कि उनका कर्त्तव्य अब क्या होना चाहिए, क्योंकि सात दिनोंके भीतर ही उनकी मृत्यु होनेवाली थी। इसपर किसी ऋषिने उनसे योगका अभ्यास करनेके लिए कहा और किसीने ज्ञानका अभ्यास करनेके लिए कहा। इसी प्रकारकी बहुत सारी सम्मतियाँ उनको दी गईं। उसी समय शुकदेव गोस्वामी सभास्थलमें प्रविष्ट हुए। उनकी उम्र मात्र सोलह वर्षकी थी परन्तु वे इतने बड़े ज्ञानी एवं प्रसिद्ध सन्त थे कि उनके पिता व्यासदेव सहित सभी उपस्थित साधु-सन्त उनका आदर करनेके लिए उठकर खड़े हो गये।

उनके आनेपर सभी ऋषियोंने एकमतसे यह कहा कि शुकदेव गोस्वामी आ गए। हम सभी लोगोंके प्रतिनिधिके रूपमें अब वे ही यह निर्णय करें कि "महाराज परीक्षितको क्या करना चाहिए ?"

शुकदेव गोस्वामीसे महाराज परीक्षितने कहा कि "आपका निर्णायक-समयपर आगमन हुआ है। कृपा करके यह बतायें कि इस समय मेरा कर्त्तव्य क्या होना चाहिए ?"

शुकदेव गोस्वामीने उत्तर दिया कि 'मैं आपको श्रीमद्‌भागवत समझाऊँगा। इसीसे आपका कल्याण होगा।" सभी उपस्थित सन्तोंने भी इस बातसे सहमति प्रकट की।

चूंकि सर्वप्रथम श्रीशुकदेव गोस्वामीने भागवतकी कथा कही, इसलिए कहा गया है, कि जिस प्रकार तोतेके स्पर्शसे पका हुआ फल और मीठा हो जाता है, ठीक उसी प्रकार शुकदेव गोस्वामीके स्पर्शसे श्रीमद्‌भागवत और अधिक आनन्ददायक हो गया।

उपरिवर्णित बातोंका आशय यह है कि किसी आत्मानुभूति करनेवाले व्यक्ति द्वारा कहे गए गीता या भागवत या किसी अन्य वैदिक साहित्यका श्रवण करना चाहिए एवं उसमें बताए गये सिद्धान्तोंको अपने नित्यप्रतिके जीवनमें उतार लेना चाहिए। भागवतको सदैव किसी भक्तके मुखसे ही सुनना चाहिए। यह बात बहुत जोरदार शब्दोंमें पुनः बताई जा रही है; जो अभक्त हैं; जो मानसिक विचारक हैं जो फलकी इच्छा रखकर कर्म करने वाले हैं तथा जो योगी हैं—वे लोग भगवान्‌के विज्ञानकी व्याख्या नहीं कर सकते। एक अन्य महान सन्त श्रीसनातन गोस्वामीने भी जोर देकर यह बात कही कि जो लोग भगवान्‌की भक्तिपूर्वक सेवा नहीं कर रहे हैं, जो अभक्त हैं तथा जिनका भगवान्‌में विश्वास नहीं है, ऐसे लोगोंको भगवद्‌गीता और श्रीमद्‌भागवत या भगवान्‌से सम्बन्धित अन्य किसी ग्रन्थ पर बोलनेकी अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इसलिए किसी अनधिकारी द्वारा भागवत या गीतापर कही गई बातको नहीं सुनना चाहिए। सनातन गोस्वामीने विशेष जोर देकर यह बात कही है कि अशुद्ध एवं अपवित्र लोगोंके मुखसे हमें भगवान्‌की चर्चा नहीं सुनना चाहिए। ●

स्वामी श्री हरिदास

—श्री दाऊदयाल चतुर्वेदी 'रसिक'

वैदिक-साधना मनीषियोंके चिन्तन और लोकको प्रवोधन देनेतक ही सीमित रह सकी। प्रकृतिकी प्रक्रियामें जब-जब कोई सिद्धान्त और उपासना बलात् आरोपित होती है, उसका रूप उतना ही परिवर्द्धित होता जाता है। वैदिक चिन्तनके इस दुरुह चित्रको वैष्णव आचार्योंने अपनी तूलिकासे नाना रंगोंके माध्यमसे सजाया, सँवारा और पल्लवित किया। भक्तिका 'नाभिषड्ज' स्वर फूट निकला। उपनिषदीय, पुराण और गीताका भक्तिसूत्र यद्यपि वैष्णवाचार्योंकी भक्तिका मूल स्रोत था, किन्तु बौद्ध, जैन और शैवोंकी ऊहापोहमें भक्तिका स्वर डोलायमान होनेलगा था। आचार्य शंकरकी गम्भीर चिन्तन सिद्धान्तावलिने इन विभिन्न मतोंसे टक्कर ली। किन्तु वहमी मायाकी कंटकाकीर्ण गुत्थियोंमें उलझकर रहगया। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' की धारणा लोकको निवृत्ति मार्गमें प्रशस्त करने लगी।

वस्तुत: ये सिद्धान्त युग-युगके प्यासे लोकके कण्ठमें आकर सूखगये। हृदय उससे स्पर्श न पा सका। दक्षिणके आलवार भक्तोंने उसे अपना सहयोग समर्पित किया, सूफियोंकी प्रेम-पीर उसके स्वागतको मचल रही थी। तवतक भक्तिकी यह नववाला यौवनमें प्रवेशकर चुकी थी। उसके यौवनका प्रवल वेग थम न पाया, विखरकर फूट निकला। व्रजके रसिक भक्तोंने उसका दामन थाम लिया।

भक्तिकी इस दीर्घ शृंखलामें उत्तरी भारतके जिन भक्तोंने वैष्णवभक्तिके इस क्रान्ति-कारी विचार-प्रवाहको स्थान दिया, उनमें रसाधिपति स्वामी हरिदासजीका गौरवपूर्ण स्थान है। माधुर्य-भावकी प्रेम-लक्षणा भक्तिका उज्ज्वल रूप स्वामीजीके काव्यमें देखनेको मिलता है।

वृन्दा-विपिनमें जीवनकी सरिता निमग्न करनेवाले स्वामी हरिदासजीका जन्म पौष शुक्ला १३ शुक्रवार संवत् १५६९ को अलीगढ़ जनपदमें स्थित हरिदासपुर ग्राममें हुआ था। सारस्वत कुलोत्पन्न स्वामी हरिदास अपने यौवन-कालमेंही विरक्त हो,अपने पिता श्रीआशुधीर से विलग हो, वृन्दावन चलेआये। भक्तकी साधना वृन्दावनका 'निधिवन' बना। मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमीको श्री बिहारीजीकी दिव्य प्रतिमाने प्रकट हो, स्वामीजी को दर्शन दिए। यह पावन तिथि आजभी 'विहार पंचमी' के नामसे महोत्सवके रूपमें मनायी जाती है। आश्विन शुक्ल १५, संवत् १६६४ में ९५वें वर्षकी आयुमें स्वामीजीने शरीर त्यागा।

जीवनके दीर्घसाधना-क्षेत्रमें [स्वामीजी ने संगीत में 'ध्रुवपद' का प्रवर्तन किया। इतिहास-प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन और बैजूबावरा जैसे शिष्योंको संगीतमें दीक्षितकर अध्यात्म के क्षेत्रमें भी एक नये दर्शनको जन्म दिया।

बंगालके वैष्णव भक्तोंने माधुर्य भक्तिके क्षेत्रमें विप्रलम्भको प्रतिष्ठापित कर राधाके परकीयात्वको महत्व दिया। उनकी मान्यतामें राधा स्वयं स्वतंत्र अधिष्ठातृदेवी हैं। उनके 'केलिमाल'की राधा स्वकीया और परकीयासे पृथक् अस्तित्ववाली दिव्य आह्लादिनी शक्ति परात्पर मूलप्रकृति, नित्य वृन्दावनाधीश्वरी और स्वेच्छाविलासिनी हैं। 'केलिमाल'की राधा सदियोंके भारतीय आध्यात्मिक चिन्तनसे अभिमंडित होनेके साथ-साथ रससे पगी हुई है, जिसमें वेद और आगमोंकी मूल प्रकृति, उपनिषदोंका "रसो वै सः", नादवादियोंका नाद ब्रह्म, जयदेवका विलास और विद्यापतिका रूपसौन्दर्य समन्वित है। स्वयं परात्पर पुरुष कृष्ण ऐसी राधाके अवर्णनातीत सौन्दर्यको शब्द-सीमामें कैसे बाँध सकते हैं? समस्त ब्रह्माण्डके व्यापक आयाममें समायी हुई उसकी अनन्त महिमा और अप्रतिम सौन्दर्य रोम-रोमकी जिह्वासे वर्णन करते-करते पूर्णताको स्पर्श नहीं कर सकती—

"रोम-रोम रसना होती तऊ तेरे गुन न बखाने जात
कहा कहों एक जीभ सखीरी बात की बात"

तुम्हारा रूप 'क्षणे-क्षणे यन्नवता मुपैत्' प्रतिक्षण नयाही नया लगता है, जो कभी न देखा था। तेरी अप्रतिम आभाको देखनेके लिए मेरे पास वैसे नेत्र नहीं, जिसमें तेरा समस्त लावण्य और प्रतिपल परिवर्द्धित रूपकी ज्योति समाहित हो सके—

"प्यारी जू जब-जब देखों तेरौ मुख तब-तब नयौ-नयौ लागत।
ऐसौ भ्रम होत मैं कबहू देखौ न री, दुति कौ दुति, लेखनी न कागत्"

इस प्रतिपल परिवर्द्धित नये रूपका रहस्य सचमुच विस्मयकारक है। क्या यह सौन्दर्य 'कोटिचन्द तें कहाँ दुरायेरी, नये नये रागत' है? किन्तु इस सौन्दर्यको देखकर स्वयं देव और नाग सुन्दरीभी ठगीसी 'ठाढ़ी' रह जाती हैं। तभी तो श्यामसुन्दर अपनी कल्पनासे परे उस दिव्य सौन्दर्यको देखकर कह उठते हैं—

"देव नारि, नाग नारि और नारि ते न होंहि और की औरें।
पाछें न सुनी, अबहू न ह्वै है यह गति, अद्‌भुत रूपकी और की औरें।"

वस्तुतः स्नेह रसकी अतृप्त झुलसको लिये हुए प्रियतम कृष्ण ऐसी रूप-माधुरीमें स्नात् होनेकी कामना करने लगे--

"ऐसी जिय होत, जो जिय सों जिय मिलै,
तन-सों तन समाइ ल्यों, तौ देखों कहा हो प्यारी।"

कितना प्रबलहै प्रियतम कृष्णके मनका उलझ जाना—

"तो ही सों हिलगि, आँखिन सों मिली रहें,
जीबत ही कौ यहै लहा हो प्यारी"

किसी अव्यक्त की अन्तः प्रेरणासे बँधा हुआ मन राधाके रस-रागमें हिलग गया। राधाके चरणोंकी परछाँहीके पीछे-पीछे उनका मन चलने लगा—

यहाँ सखी-भावकी स्वीकृति है। राधा 'आनन्द' वस्तुका नित्य रूप है, जो अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त होकर नित्य क्रीड़ासे आनन्दकी अभिव्यक्ति करती है। वह अलभ्य और अगम्य होनेपर भी अनुभवैकगम्य है। उसे योगियोंकी निर्विकल्प समाधिका विषय नहीं माना जा सकता। अन्य संप्रदायकी शक्ति और शक्तिमानका भेद होते हुए भी राधा स्वयं आनन्द स्वरूपिणी है। 'निरतिशय आनन्द' का नाम ही राधा है। राधा 'नित्य भाव' है। उनका विहार नित्य है। यह भाव किसी वाह्य लौकिक कर्मज्ञानादिसे अवगत नहीं होता अतः इसे ज्ञान कर्मादि संस्पर्श शून्य कहा जाता है। राधा स्वयं कृष्णकी उपासिका व आराध्या हैं। क्रीड़ाके लिए प्रिया-प्रियतम् रूप हैं। कृष्णकी एक राधा है, राधाके एक कृष्ण है। यहाँ न कोई साधक है न साध्य, न ही कोई साधना है। वे एक होकर ही दो बने हैं। दोनों 'श्री तत्त्व' के दो रूप हैं। परस्पर तत् सुखभावसे रसास्वादनके लिए नित्य प्रेम-लीला करते हैं और उस विहारमें लीन रहते हैं—

"चलौ क्यों न देखौ री खड़े दोऊ कुंजनकी परछाँही,
एक भुजा गहि डारि कदमकी दूजी भुजा गल बाँही।
छवि सों छबीली, लपटि लटक रही, कनक वेलि तरु तमाल अरुझाँही
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रँगे हैं प्रेम रंग माँही।"

स्वामीजीकी राधा विविध रूपोंमें दृश्यित है। राधा स्नानके पश्चात् परिधान धारण कर प्रस्फुटित पुष्पोंकी मादक तरंगसे अभिभूत होकर अपने केशोंको सुखाती और सँवारती है। बिखरी अलकोंके मध्य उनका भी मुख ऐसा प्रतीत होता है, जैसे नवीन मेघोंमें तारागण अपनी दीप्तिसे खगमंडलको झिलमिल कर रहे हों—

"मोंधें न्हाइ बैठी पहिर पट सुन्दर, जहाँ फुलवारी तहाँ सुखवत अलकें
कर नख सोभा कल केस सँवारति, मानौ नवघनमें उड़गन झलकें।"

प्रियतम कृष्णके अंगका चर्चित चन्दन प्रियाजूके वक्षस्थलकी कंचुकी पर पतिरूपमें शोभा दे रही है। कहीं अंजन लगा है, अलकावलि अस्तव्यस्त है। फिर इन रतिचिन्होंका दुराव सखियोंसे कैसे हो सका? नारी सुलभ चेष्टाएँ उपक्रमोंके साथ अभिव्यक्त हुईं—

"हरिके अंगकौ चन्दन लपटानौ तन तेरे देखियत जैसे पीत चोली।
मरगजे आभरन बदन छिपावति, छिपै न छिपायें मानौ कृष्ण बोली।
कहूँ अंजन, कहूँ अलक रही खसि, सुरति रंगकी पोटें खोली।"

माधुर्य भक्तिको कुछ विद्वानोंने यौन-सम्बन्धसे उद्भूत वासनापरक प्रेम माना है। इसके मूलमें परस्पर कुछ विरोधी विचार प्रेरक रहे हैं। बौद्ध-धर्मके सहजयान सम्प्रदायमें वासनात्मक 'युगनद्ध' की परिकल्पनाका प्रेम अपरिष्कृत रूपमें सम्मुख आया, जिसमें कामवासनाकी पूर्तिके पश्चात् 'निर्वाण' की कल्पना की गई थी। कुछ तथाकथित आलोचकोंने

भक्तिकी दाम्पत्य-भावनाका सम्बन्ध शक्तिसे जोड़ा है ! भारतीय देवताओंके साथ पत्नीका दाम्पत्य-स्वरूप परवर्त्ती माधुर्य-भावका उद्गम केन्द्र हो सकती है ! यद्यपि भक्तिके क्षेत्रमें इस दाम्पत्य-भावनाका सम्बन्ध परोक्ष रूपसे माना जा सकता है, तथापि भेद यह है कि वह दाम्पत्य-भाव ऐहिक और ऐन्द्रिय रूपमें मधुर भक्तिमें सम्मानित नहीं हो पाया, वह आध्यात्मिक अनुभूतिका परिष्कृत और उच्चतम केन्द्र रहा है। मात्र वासनाकी विवृत्तिको प्रेमकी संज्ञा नहीं दी जा सकती। वासना शरीरका धर्म है, प्रेम हृदयकी शुभ्र वृत्ति है। वासना रूप, लोभ तथा यौन क्षुधातृप्ति तकही सीमित रहती है, प्रेम इसके ऊपरका सोपान है। वासना सामान्योन्मुख होनेके कारण अतलस्पर्शी नहीं बन पाती, प्रेम विशेषोन्मुख होनेसे अतलस्पर्शी होता है। वासना मानवकी पतनोन्मुखी अवस्था है और प्रेम इसका उन्नयन, परिष्कारक तथा उन्मेषी स्वरूप।

भगवान्‌के शील, शक्ति और सौन्दर्यमें से स्वामी हरिदासजीने सौन्दर्यको ही अपना उपजीव्य बनाया और अपनी भाव-सम्पदा से उसे सजाया, सँवारा ! तुलसीके श्रेय-पथसे परे, कबीरके अनहत नादसे दूर उनकी भावाञ्जलि अतलस्पर्शी है। वे ऐकान्तिक साधक थे ! 'प्रेमगली अति साँकरी, तामें दो न समाइ'—वस्तुतः उनके अभिनव काव्यमें निकुञ्जकी केलि और नाद-ब्रह्मकी साधनामें तीसरे भावके लिए कोई स्थान शेष नहीं रहा था।

बैरागी बनिबो कहा, कहा छाड़िबो वस्त्र,
श्रीराधा अरु कृष्ण की कृपा यहाँ सर्वत्र।
कृपा यहाँ सर्वत्र, व्यर्थ भूल्यों चों बाउर,
करि आतम-उत्सर्ग, मोह, मद तज अब राउर।
छाँड़ि पिसुनता पाप, मोह ममता जग त्यागी,
बन अनुरागी चरण-कमल, होहुँ मन बै-बैरागी।

* * *

ना सावन भौंरी भुकै, कंज चरन मधु प्रेम,
गन्ध बहै नितप्रति दिवस, निसिहू गहे सुनेम।
निसिहू गहे सुनेम, प्रेम लोभी ताही की,
अन्त कहूँ नहिं जाहि गंध जगती चाही की।
देखि चहूँ घर ध्यान यही पावन वृन्दावन,
गह निसि वासर नेम, चरन धर हिय ना सावन।

—आचार्य कैलाशचन्द्र 'कृष्ण'

भारतीय-दर्शन का भौतिकवादी विश्लेषण

श्रीभगवतप्रसाद शर्मा

भौतिकवादके नवोन्मेषने वर्तमान समाजकी चिन्तन-दृष्टियोंमें एक अपूर्व अन्तर उत्पन्न कर दिया है। आजका प्रवुद्ध-वर्ग किसीभी सत्य अथवा तथ्यको आस्था अथवा विश्वासकी अपेक्षा विवेक और विचारके आधारपर ग्रहण करता है। आजके युगकी महती आवश्यकता यह है कि हम अपने पुरातन प्रकरणोंको वैज्ञानिक विश्लेषणकी कसौटीपर कसकर उनकी समीचीनता सिद्ध करदें। आजके तर्क-प्रधान प्रवुद्ध-प्राणीको अपने प्राचीन मनीषियोंकी प्रखर प्रज्ञाका सम्यक् बोध करावें। इसी आशयसे यह स्तम्भ प्रारम्भ किया जारहा है। सदय पाठकोंसे निवेदन है कि हमारे इस प्रयासपर अपना अभिमत हमें भेजनेकी कृपा करें। —सम्पादक

देहिनोऽस्मिन् यथादेहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ गीता, २-१३ ॥

जैसे कुमार, युवा और जरा नामक शरीरकी तीन स्थूल अवस्थाएँ हैं और उनका विकार अज्ञानसे आत्मामें भासता है, वैसेही एक शरीरसे दूसरे शरीरको प्राप्त होनाभी अज्ञानसे आत्मामें भासता है। इसलिए तत्त्वको जानने वाला धीर पुरुष इस विषयमें मोहित नहीं होता है।

तत्त्वसे जानने वाली बात गीतामें कई स्थानोंपर आई है। भगवान् श्री कृष्णके समयमें तत्त्व केवल पाँच थे। इन्हें जल, पृथ्वी, आकाश, वायु और अग्निके रूपमें माना जाता था। परन्तु अब वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा १०५ तत्त्वोंकी खोज हो चुकी है। अध्यात्मके क्षेत्रमें अभी-भी जल, पृथ्वी आदिक पंच-तत्त्वोंकी ही गणना की जाती है। वैज्ञानिक दृष्टिसे अन्वेषण करें तो गीतामें तत्त्व शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। पहला सूक्ष्म तथा दूसरा स्थूल। १०५ तत्त्वोंका सम्बन्ध सूक्ष्म तत्त्वोंसे है, जिनको आधुनिक विज्ञानने खोजा है। इस लेखमें तत्त्वका सूक्ष्म स्वरूप ही अधिगृहीत किया गया है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्व दर्शिभिः ॥ गीता, २-१६ ॥

असत् वस्तुका अपना कोई अस्तित्व नहीं होता है और सत्का अभाव भी सम्भव

नहीं है। इसीके बाद अगले श्लोकमें इस नाशरहित अप्रमेय नित्य स्वरूप जीवात्माके यह सब दर्शनीय स्थूल शरीर नाशवान कहे गये हैं।

गीताकी भाषा बहुत गूढ़ और सांकेतिक है। इस सांकेतिकताकी पृष्ठभूमिमें दर्शनकी गहनता अत्यन्त विराट रूपमें समाहित हुई है, जिसका विवेचन सहज और सरल नहीं है। दोनों श्लोकोंका अर्थ दूसरे शब्दोंमें यह होता है कि जिस वस्तुका अस्तित्व है, वह सत् है और उसका अभाव किसी भी स्थितिमें नहीं होता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ गीता, २-२०॥

यह आत्मा किसी कालमें भी न जन्मता है और न मरता है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य शाश्वत और पुरातन है। स्पष्ट किया जा चुका है कि विज्ञानके सिद्धान्तानुसार 'आउट आफ नथिंग' से किसी वस्तुका जन्म नहीं हो सकता। आत्मा शाश्वत है और इसका जन्म भी कहीं से नहीं हुआ है।

आत्मा भी पदार्थ और ऊर्जाकी तरह शून्यसे नहीं बना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पदार्थ, ऊर्जा और आत्मा एक से नियमका पालन करते हैं। पदार्थ और ऊर्जाको मिलाकर शरीर बनता है, जिसे आप एक स्वचालित यंत्र मान सकते हैं। जिसका स्टीयरिंग-व्हील है, मस्तिष्क। गीताके अनुसार मन और बुद्धि, जो विकासशील या परिवर्तनशील हैं। औपरेटर है आत्मा, जोकि अत्यन्त स्वतंत्र वस्तु है।

'इलैक्ट्रोन' घूमता है फिर भी उसका प्रभाव ऐसा है कि वह नहीं घूमता, क्योंकि वह ऊर्जाका विकिरण नहीं करता, जैसा कि 'इलैक्ट्रोमैग्नेटिक' सिद्धान्तके अनुसार आवेशित वस्तु त्वरित अवस्थामें करती है। यह विज्ञानका एक प्रयोगात्मक सत्य है। सूक्ष्म वस्तुओंमें गति या क्रिया है, पर उनकी ऊर्जा कम नहीं होती, न ही वह नष्ट होती है। क्रिया-भेदसे उनका व्यवहार बड़ी वस्तुओंसे भिन्न अवश्य हो जाता है।

अन्तमें आत्मा यद्यपि शरीरका 'आपरेटर' है परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण जैसे 'इलैक्ट्रोन' नष्ट नहीं होता है, उसी प्रकार यह भी नष्ट नहीं होती। अतः आत्मा अमर है तथा पुनर्जन्म लेती हैं। जैसे गणितमें $+ \times + = +$, $+ \times - = -$ और $- \times - = +$ स्वयं सिद्ध है। उसकी वजहसे हम चन्द्रमापर पहुँचे हैं। विज्ञान उसी नियम पर आधारित है।

इसी प्रकार उपरोक्त कथन स्वयं सिद्ध है। कर्म-सिद्धान्त भी इसकी पुष्टि करता है। यदि कर्म-सिद्धान्त न माना जाय तो मनमें अत्यन्त भय पैदा होता है। हमारा अनुभव बताता है कि भय अज्ञानसे पैदा होता है न कि ज्ञानसे।

यदि पुनर्जन्म नहीं होता है तो मानव अपनी जानका खतरा मोल लेकर क्यों काम करता है? क्योंकि स्वतंत्रताका दूसरा नाम आत्मा कहा जा सकता है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।। गीता, २-२२।।

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्याग कर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है। वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्याग कर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।

इस प्रकार गीताके अनुसार हम देखते हैं कि जीवात्मा चेतनकी अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु है, जिसका अस्तित्व योग द्वारा अनुभव किया जा सकता है। साथ ही यह भी ध्यान रखने योग्य सत्य है कि जीवात्मा कभीभी नष्ट नहीं होती है। अपितु विभिन्न शरीर धारण कर अपना रूप बदलती रहती है।

विज्ञानने लगभग ३०० वर्ष पूर्व पदार्थकी अविनाशताका नियम दिया था। इस नियमके अनुसार पदार्थको नष्ट कदापि नहीं किया जा सकता है और शून्यसे (आउट आफ नथिंग) पैदा किया जा सकता है। हाँ, पदार्थ विशेष प्रक्रियामें अपना रूप अवश्य बदलता रहता है।

पहले ऊर्जाको पदार्थसे भिन्न समझा जाता था। फिर ऊर्जाके बारेमें भी पदार्थ जैसा ही नियम पाया गया। वास्तवमें प्रत्येक पदार्थके अस्तित्वके लिए उसके साथ ऊर्जाभी सम्मिलित रहती है और आइन्सटीनके अधुनातन समीकरण नामक सिद्धान्त ($E=MC^2$) के अनुसार पदार्थको ऊर्जामें बदला अवश्य जा सकता है।

पदार्थके सूक्ष्म कण इलैक्ट्रोन, प्रोटोन आदि हैं। पर उनका पृथकसे कोई अस्तित्व नहीं हैं। यदि किसी धातु-तलपर अल्ट्रावायलेट या एक्सरे डाली जाय तो वह घन आवेशित हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसको 'इलैक्ट्रोन' छोड़ देते हैं। पुनः 'लाइट' या 'रे' को हटानेपर धातु-तल उदासीन होजाता है। इसका मतलब 'इलैक्ट्रोन' पासमें ही रहते हैं। यद्यपि उनका पृथक् अस्तित्व नहीं है, फिर भी वह नष्ट नहीं होते हैं।

इस नियमानुसार जिसका अलग से अस्तित्व है, वह परमाणु भी नष्ट नहीं किया जा सकता है। 'यूरेनियम' का परमाणु जो स्वयं टूट रहा है—को सुगमतासे अन्य परमाणुओंमें बदला जा सकता है तथा कुछ 'न्यूट्रोन' जिसका पृथक् अस्तित्व नहीं है 'आइन्सटीन-समीकरण' के अनुसार ऊर्जामें बदल जाते हैं।

इस प्रकार विज्ञान भी यही सिद्ध करता है कि इस बातको रूक्ष्मसे सूक्ष्म वस्तु, जिसका अस्तित्व है, नष्ट नहीं होती है, केवल अपना रूप बदलती है।

जब हम किसीकी ओर एक अंगुली करते हैं, तो तीन अंगुलियां स्वभावतः हमारी तरफ इशारा करती हैं। अतः दूसरोंसे अपनेमें तीन-गुना अधिक दोष तलाश करना चाहिए।

ध्यान-विधि

ध्यानके समय नेत्रोंकी स्थिति :

* पुतली स्थिर हों, अपने स्थानपर जोर नहीं लगाना चाहिए, जैसे दो गुलाबके फूल रक्खे हों।
* नींद आती हो तो नेत्र खुले रहने चाहिए। इसे उपनिषदोंमें पूर्णा-दृष्टि कहते हैं।
* मन चंचल होता है तो नेत्र बन्द कर लेने चाहिए। इसका नाम है, अमादृष्टि।
* निद्रा आलस्य और चंचलतासे रहित मन होनेपर, अर्धोन्मीलित नेत्रोंसे ध्यान करना चाहिये। नींद और चंचलता दोनोंका प्रकोप हो, तब भी यही दृष्टि उपयोगी है। यह प्रतिपद दृष्टि है।
* नेत्र खुले हों, बन्द हों या अधखुले; लक्ष्य अन्तर्देशमें ही होना चाहिये। पुतली और पलकें दोनों ही स्थिर होनी चाहिये।

  शास्त्रमें कहा है कि जिसकी दृष्टि लक्ष्यके बिना, प्राण निरोधके बिना और वृति आलम्बनके विना स्थिर है, वह योगी, पूज्य एवं गुरु है।

ध्यानके पांच विघ्न :

१. लय—मनका सो जाना।

२. विक्षेप—मनका चंचल होना।

३. रसास्वादन—मजा लेना, भोक्ता होना।

४. कषाय—रागास्पद या द्वेषास्पदका स्मरण।

५. अप्रतिपत्ति—ध्येयके स्वरूपको ठीक-ठीक ग्रहण न कर सकना।

भगवान् श्रीकृष्णके सखा उद्धव

डॉ० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

[संस्कृत साहित्यसे लेकर हिन्दी-साहित्य तक श्रीउद्धवके बहुविधि वर्णित स्वरूप हैं। संस्कृत-साहित्यविदोंने अपनी प्रखर प्रज्ञा और अन्वेषणात्मक गहन चिन्तन-दृष्टिके माध्यमसे कृष्णके इस सखाके स्वरूप और प्रकृतिका अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण किया है। तदनन्तर भक्तिकालसे आधुनिक-काल तकके सहृदय सुकवियोंका भी यह प्रिय पात्र रहा है। भारतीय साहित्यके विस्तृत फलकपर उद्धव पुरुषरूपमें एक पात्र है, प्रतीक रूपमें एक दर्शन है, मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यमें एक सिद्धान्त है और अध्यात्मके क्षेत्रमें एक शाश्वत जीवन-दृष्टि है।]

श्रीउद्धव भगवान् कृष्णके परम सखारूपमें सुप्रसिद्ध हैं। गोपी-उद्धव संवादकी व्यङ्ग्यपूर्ण उक्तियों तथा उनके अनूठे कथोपकथनोंसे संस्कृत एवं हिन्दी-साहित्य भरा पड़ा है। लोक संस्कृतिमें भगवान्के प्रिय सखा उद्धव सबसे अधिक चर्चित हैं। होलीके पर्वपर विभिन्न वर्गोंके गायन-संगीतमें उद्धव-संवाद अनेक विधि-रूपकोंमें गाया जाता है। भजन, भगत, अखाड़े, रसिया-दंगल, विवाहके गीत, संस्कार-गीत आदि सभीमें किसी न किसी रूपमें, उद्धव आज भी व्रजके लोगोंके कण्ठहार बने हुए हैं। 'ऊधौको लेन न माधौको दैन' तथा परम सीधे व्यक्तिको 'ऊधौजी' कहना आदि लोकोक्तियोंके प्रयोगमें भी उनकी स्मृति यहाँ अत्यन्त लोकप्रिय है।

महाकवि सूरका पद "ऊधौ, मोहि व्रज विसरत नाहिं" हो या जगन्नाथदास 'रत्नाकर'का 'उद्धव-शतक' हो अथवा नन्ददासका 'ऊधौको उपदेस सुनौ व्रजनागरी" हो। सभीमें विभिन्न रूपोंमें उद्धव आजभी अमर हैं। उद्धवकी वंश-परम्पराका संक्षिप्त परिचय पुराण-साहित्यमें इस प्रकार प्राप्य है। इनके पिताका नाम देवभाग था। हरिवंश पुराणमें उल्लेख है :—

उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्।
पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुद्धवम्॥

(हरिवंशपर्व ३४ अ० ३१)

वसुदेवजीके ये भतीजे अर्थात् कृष्णके चचेरे भाई थे। एकलव्य भी भगवान्का चचेरा भाई था। किसी कारणवश बालकपनमें इसका परित्याग कर दिया गया था और निषादोंने इसका लालन-पालन किया था।

श्रीभागवत्‌में सर्वप्रथम उद्धवजीका प्रसङ्ग तृतीय स्कन्धमें आता है, जिसमें वे विदुरजीसे वार्तालाप करते हैं और भगवान् कृष्णकी कथामें अनुरक्त दिखलाई देते हैं। दशमस्कन्धमें गोपियोंके प्रसंगमें तो वे बहुचर्चित हैं ही। पुनः प्रभास क्षेत्रकी यात्रामें वे श्रीकृष्णसे अनेक ज्ञान-विज्ञानके जिज्ञासुके रूपमें चित्रित हुए हैं। यह प्रसंग उद्धव-गीता कहलाता है।

श्रीमद्‌भागवतके विद्वान् टीकाकारोंने इनके प्रसंगमें अपने विचार व्रजयात्रा-गमनके अवसरपर प्रस्तुत किये हैं :—

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो वृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः॥

(भागवत १०।४६।१)

श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि उद्धव वृष्णि वंशके प्रधान पुरुष थे; साक्षात् वृहस्पतिजी महाराजके शिष्य एवं परम बुद्धिमान् थे। भगवान् कृष्णके परम प्रिय सखा तथा मन्त्री भी थे।

टीकाकार श्रीधर स्वामीको उद्धव और गोपियोंके रहस्य-वार्ता प्रसंग में उद्धवका मन्त्रीपद उचित प्रतीत हुआ, एतदर्थ उन्होंने लिखा कि गोपियोंको सान्त्वना देनेका कार्य मन्त्रि-साध्य है, वह उद्धव द्वाराही सम्पन्न होने योग्य है।[1] श्रीकृष्णने इस कार्यार्थ वलदाऊजीको न भेजकर उद्धवको ही क्यों भेजनेका निश्चय किया? इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए श्रीजीव गोस्वामीजीने लिखा कि तत्कालीन राजाओंके उपद्रवोंके कारण न तो कृष्ण स्वयं जा सकते थे और न वलरामको ही भेजना सम्भव था।[2]

उद्धवजीने वृहस्पतिसे विद्याध्ययन कहाँ किया, इसका सम्यक् निर्देश ग्रंथोंमें अप्राप्य है तथापि उन्हें वृहस्पतिका शिष्य कहा गया है—इतना असंदिग्ध है। श्रीवीरराघवाचार्यने इस तथ्यपर दृष्टि-निक्षेप करते हुए लिखा है कि साक्षात् शिष्यका अर्थ बुद्धि-कौशलकी ओर इंगित करना है। 'बुद्धिसत्तमः'से यह भाव स्पष्ट होता है कि कोई ऐसा विदग्ध पुरुष जो प्रकृतरूपसे ही प्रज्ञासम्पन्न तथा चतुर हो। आचार्य वल्लभका इस सम्बन्धमें यह मत है कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्वजनोंके पास तीन प्रकारके सन्देश भेजना चाहते थे।

१, प्रकट सन्देश—जो नन्द बाबा और यशोदा माँके अनुकूल था।

२. अल्पगोप्य सन्देश—जो उनके बाल-सखा श्रीदामा, मधु मंगल आदिके उपयुक्त था।

३. अतिगोप्य सन्देश—जो व्रजाङ्गनाओं हेतु संप्रेषित था।

'दयितः सखा'में दोनों पद सार्थक हैं। दयितका अर्थ है प्रिय। परन्तु प्रिय तो पिताका पुत्र और गुरुका शिष्य भी हो सकता है। अतः द्वितीय पद सखा रखकर यह ज्ञापित किया गया है कि उद्धव समानशील-व्यसन युक्त होनेके कारण सखा थे।"

१—भावार्थ दी० १०।४६।१

२—वैष्णव तो० १०।४६।१

भगवतः समानशीलव्यसनत्वात्-सखा। आचार्य विजयध्वज इस प्रसंगको भक्ति विस्तार ही मानते हैं। उद्धव विश्वासी थे यह वृष्णि शब्दसे ध्वनित है और मन्त्री पदसे ध्वनि गृहीत है—व्रजवासियोंसे मन्त्रणाकी। दयितपदसे उद्धव प्रेमरूपी अमृतपान करने योग्य है अथवा उद्धव शब्दका अर्थ है "उत्सव"। व्रजवासी मूर्तिमान् उत्सवको देखकर आनन्दित होंगे—ऐसा विश्वनाथ चक्रवर्तीका मत है।

उद्धव एकान्ती भक्त थे, जैसा कि भागवतमें लिखा है :—

"तामाह भगवान् प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित्" भा०१०।४६।२

एकान्ती भक्त वह होता है, जो पिता-माता-देव आदि सबको त्यागकर हरि भगवान्में प्रगाढ़ प्रेम करे :—

विहाय पितृदेवादीन् परिनिष्ठाङ्गतो हरौ।
तत् गाढ़ प्रेमभिः पूर्ण एकान्तीति निगद्यते॥

भगवान् अपने प्रिय भक्त श्रीउद्धवको कहीं निर्जन स्थानमें लेगये थे और वहाँ उन्होंने गोपियोंके प्रति सन्देश वचन कहे थे।

उस समय टीकाकारोंके मतानुसार गोकुलमें तीन प्रकारका प्रेम विद्यमान था :

१—औत्कण्ठ्य प्रधान प्रेमी ; नन्दबाबा—यशोदा आदि इस श्रेणीके प्रेमी थे।

२—विश्रम्भ प्रधान प्रेमीः ; श्रीदामा-मधुमंगल आदि सखा-वर्गकी कोटि।

३—विवेकशून्य प्रधान प्रेमीः ; वनके पशु-पक्षी-गौ-पर्वत आदिका वर्ग।

उद्धव अपने यानको धूलिमें छिपाकर नन्दभवन पहुँचे थे। यथा—"छन्नयान," पद इस रहस्यपर प्रकाश डालता है। गायोंके लौटनेके समय उनके खुरके कारण धूलि उड़ी, अतः रथ धूलिसे आच्छादित हो गया था। सायंकालका समय था।

आचार्य विश्वनाथका मत है कि भगवान्के वियोगके कारण पशु व्रजमें शीघ्रतासे प्रवेश करते थे। अतः समग्र व्रज धूलि-धूसरित हो गया। उद्धव व्रजमें जाते हैं और प्रभु उन्हें वियोगावस्थामें भी सज-धजसे परिपूर्ण व्रजके दर्शन कराते हैं। नन्दबाबा भी कृष्णके वियोगमें श्रीविहीन होने चाहिए थे। बाबा नन्दने कृष्णके अनुचर श्रीउद्धवकी कृष्णकी भावनासे ही पूजाकी थी। इसी प्रसंगमें यह भी दृष्टव्य है कि 'श्रौतकर्म—स्मार्तकर्म युक्त' व्रजकी शोभा उद्धव देखते हैं। हवि और मन्त्र श्रौतकर्म कहे जाते हैं। पितर-देवता स्मार्त धर्ममें हैं। श्राद्ध एवं हवनमें तान्त्रिक धर्मका समावेश है।

संस्कृतकालसे लेकर हिन्दी-काल तक आचार्योंने उद्धवकी लीलाका विभिन्न प्रकारसे वर्णन किया है। हिन्दी कवियोंकी रचनामें तो उद्धव सर्वोपरि विराजमान हैं। एक कविके शब्दोंमें—

जो हरि मथुरा जाय बसै हमरे जिय प्रीति बनी रही तोऊ।
ऊधौ बड़ौ सुख ये ऊहमें अरु नीके रहें वह मूरत दोऊ।
हमारे ही नामकी छाप पड़ी अरु अन्तर बीच अहै नहिं कोऊ।
राधा कृष्ण सभी तो कहैं पर कूबरी कृष्ण कहै नहिं कोऊ॥

श्रीकृष्ण-जन्म स्थानके भव्य रंग-मंच पर

स्वामी श्रीहरिदास संगीत-समारोह

श्रीवीरेन कपूर

विगत दिसम्बर मासका तीसरा सप्ताह मथुरा नगरमें "शास्त्रीय-संगीत"की हलचलोंसे भरा-पूरा रहा। अठारह दिसम्बरको विहारपंचमी थी। विहारपंचमी-शास्त्रीय-संगीतका महापर्व है, इस दिन स्वामी श्रीहरिदासजीने अपनी संगीत-साधनाको साकार करनेके लिए अपने उपास्य विग्रह "श्री बांके विहारी"का प्राकट्य किया था। सन् १९६८से प्रतिवर्ष इस दिन एक विशेष समारोह आयोजित किया जाता रहा है।

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्षभी श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके भव्य रंगमंचपर संगीत-सम्मेलन' हुआ। १७ दिसम्बर ७४को इस सम्मेलनका उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय नागरिक-उड्डयन मंत्री श्री राजवहादुरजीने कहा कि स्वामी श्री हरिदासजी भारतीय शास्त्रीय संगीतके पुनरुद्धारक तथा पोषक थे। ऐसेही सन्तों और भक्तोंकी साधनाके कारण यह व्रज-भूमि संगीतमयी है। स्वागताध्यक्ष श्री कीर्तिपाल शर्माने कहा कि, 'व्रज'संगीतका केन्द्र है, यहाँ एक संगीत विश्वविद्यालयकी स्थापना होनी चाहिए।

लगभग ५०० संगीत प्रेमी और प्रतिष्ठित नागरिकोंसे भरे हुए पण्डालमें व्रजके प्रख्यात संगीतज्ञ श्री वालजी चतुर्वेदीका ओजस्वी एवं प्रभावशाली स्वर गूँजने लगा। श्रीवालजीने राग हमीरमें एक ध्रुपद गाया। उनके वाद श्री व्रजनारायनने सरोदकी स्वर-लहरी छेड़ी। अन्तमें सुविख्यात नृत्य कलाकार श्री गोपीकृष्ण मंचपर आए। उनके नृत्यमें सम्मोहन था। एक ओर नृत्यकी शास्त्रीय सूक्ष्मताओंको समझने वाले श्रोता और दर्शकोंकी आँखोंमें प्रशंसाका भाव था तो दूसरी ओर नृत्यकी वारीकियोंको न समझने वाले दर्शक उनकी भाव-पूर्ण मुद्राओंको देखकर खिल उठते थे।

दूसरे दिन सर्वप्रथम श्री सत्यभान शर्माने स्वामी श्रीहरिदासजीका एक ध्रुपद गाया। इनके पश्चात् इस आयोजनके संस्थापक स्वामी श्री डी० आर० पार्वतीकरजीने दत्तात्रेय वीणापर भजन प्रस्तुतकर स्वामी श्री हरिदासको श्रद्धांजलि अर्पितकी और अपने वक्तव्यमें पधारे हुए कलाकारों एवं प्रवुद्ध श्रोता-वर्गको धन्यवाद दिया। वनारस से पधारे श्री पशुपतिनाथ मिश्र तथा श्री अमरनाथ मिश्रके चमत्कारपूर्ण गायनने श्रोताओंको मंत्रमुग्ध कर दिया। इनके वाद वम्वईकी सुप्रसिद्ध नृत्यांगना कु० हवीवा रहमानके शास्त्र-वद्ध नृत्य एवं भाव-प्रदर्शनने दर्शकोंका मन मोह लिया। नृत्यके पश्चात् आकाशवाणी दिल्लीके कलाकार श्रीविनयकुमारजीका सितार-वादन हुआ। अन्तमें कु० सुनीता झींगरनके गायनके साथ, रात्रि ३.३० बजे इस समारोहकी समाप्ति हुई।

गीतामृत

●

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैवह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

गीता ६, ५

*

आत्मा का उद्धार करो, आत्मा से ही, ओ मतिमान !
अधोगति उसकी करो नहीं, आत्मा में ही हैं भगवान् ।
आत्मा पर विश्वास करो, वही है परम हितैषी मित्र,
हुआ यदि अविश्वास तो सुनो, आत्मा शत्रु प्रबल बलवान ।

● ●

None else but you alone
'O Arjuna' are your friend !
Left up to you is whether
you ascend or descend.
Saving yourself you act as your own friend
The worst enemy to self
if to temptations you bend !

उपदेशामृत

★

यत् कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात् परितोषोऽन्तरात्मनः
तत् प्रयत्नेन कुर्वीत, विपरीतं तु वर्जयेत् ॥
मनु ४, १६१

●

जिस कर्मकी स्वीकृति तुम्हारी आत्मासे प्राप्त हो,
वह कर्मही सत्कर्म है, अविलम्ब करना चाहिए।
पर जो अस्वीकृत आत्मा कर दे, उसे अनुचित समझ,
मनमें न झूठे दम्भका विश्वास भरना चाहिए।

If your opinion scatters not in fractions
With extreme pleasure should you set to actions !
Not the least should you hesitate to abandon
If your soul is shadowed with dissatisfaction !

●

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा सरस्वती प्रेस, मथुरामें
मुद्रित एवं प्रकाशित